राम संदेश

भक्ति, ज्ञान एवं कर्मयोग की आध्यात्मिक पत्रिका

पालन हो शिक्षा संस्कार
शुद्ध आचरण का आधार

काम क्रय हो या व्यापार
सभी जगह उच्च व्यवहार

सिद्ध प्रणाली पर परिवार
संबंधों में निरंतर प्यार

पनि हो पाएं तो संसार में
होगा सुख शांति प्रसार

वर्ष 64 जनवरी-मार्च 2016 अंक 1

रामाश्रम सत्संग, गाज़ियाबाद

विषय सूची

क्रमांक पृष्ठ

1. भजन 01

2. आध्यात्म विद्या कर सार (भाग-11) 02
   लालाजी महाराज

3. संतमत में उपासना का तरीका क्या है? 08
   डा. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज

4. साधन 16
   अनमोल वचन

5. गुरु के वचन-व्यवहार द्वारा आत्म-साक्षात्कार 19
   डॉ. करतार सिंह जी साहब

6. हातिम हासम 32
   मुस्लिम संतों के जीवन चरित्र

7. परम पूज्य ऐ.के. बैनर्जी साहब एवं 38
   परम पूज्य दादा गुरुदेव का प्रसाद

राम ॐ संदेश

संस्थापक

ब्रह्मलीन परमसंत डॉ. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज

संरक्षक

ब्रह्मलीन परमसंत डॉ. करतार सिंह जी

सम्पादक

डॉ. शक्ति कुमार सक्सेना

(सर्वोच्च आचार्य एवं अध्यक्ष)

वर्ष 64 जनवरी–मार्च 2016 अंक–1

भजन

लूट ले राम नाम अनमोल।

यह अनबेधा मोती जग में, देख नेत्र निज खोल।।

महावीर दिन रात लूटते, ध्रुव लूटा बे तोल।।

प्रति क्षण शंकर लूट मचावें, नित महि मंडल डोल।।

दास कबीर लूटकर लीना, बजा नाम का ढोल।।

मन भर लूटा तुलसी जी ने, पाकर रत्न अमोल।।

हरदम लूटा मीराबाई, पियो हर्ष विष घोल।।

परमसंत महात्मा रामचन्द्र जी महाराज

अध्यात्म विद्या का सार

बक़ा (पुनर्जीवन)

(श्रृंखला की समापन किस्त)

इसके बाद सातवीं मंज़िल बक़ा की है। जैसे फ़ना का समझना मुश्किल था वैसे ही बक़ा का समझना भी सहज नहीं है। 'फ़ानी' के मानी हैं 'तबदील होने वाली हालत'। 'बक़ा' के मानी हैं 'बाक़ी', जो तबदील न हो, जो 'न मरे न खपे' वही बाक़ी है। वह न कमाल (पूर्णता) है न ज़बाल (नीचे गिराव) है; न हस्ती है, न नेस्ती है; न खुदा (खुद आया हुआ) है, न किसी का लाया हुआ। जिसके सहारे दुनिया के तमाम तमाशे हो रहे हैं और होंगे, उसी का नाम बक़ा है। इस आधार या सहारे का कोई नाम नहीं है और सब नाम उसी के हैं।

नाम न होते हुऐ भी वह नामी गिरामी है। काम न करता हुआ भी वह कर्त्ता है। बग़ैर ज़बान के वह बोलता है। मतलब का ताला बग़ैर कुंजी के खोलता है। वही सबका शुरू, वही सब का आख़ीर है। भला वह किस तरह है? उसकी किरणों का समुद्र, दरिया (नदी) नाले वग़ैरा में अक्स पड़ा। यह इन्तहा (आख़ीर) है। मगर इसका समझना बहुत कठिन है। यहाँ पर फ़रिश्तों (देवताओं) का भी ग़ुज़र (पहुँच) नहीं है। अगर थोड़ा बहुत भी समझ सकता है तो इंसा ही समझ सकता है। यह हकीक़त है, इसी का नाम बक़ा (जो बाकी रहे), जो कभी न मरता है न पैदा होता है, वही सत्य है, वही सत्य और सत्य नाम है।

बीज से फल और फल से बीज तक – इसके सिवा और क्या है। बीच की हालतों में यानि कोई शाखा, तना, फूल के बीच अटकता है तो

उसे यानी असल को नहीं देख सकेगा – वो हमेशा नज़र से ग़ायब रहेगा। जब फ़ना हुये अपनी छोटी सी नाक़िस और महदूद (सीमित) हस्ती को जवाब दे बैठे तो वह सामने आयेगा और देखो अब तुम नहीं हो, वही है।

ख़्वाब (सोना) बेदारी (जागना) और गहरी नींद तीनों हालतें फ़ानी (नाशवान) हैं। कभी जागना कभी सोना है। कभी गहरी नींद में होशो हवास खोना है। ये सब रोज़ बदलते रहते हैं। क्योंकि बदलना इनका काम है मगर तुम वही हो जो पहले थे। तुम नहीं बदले, क्या इनसे तुम्हें अपनी हस्ती नज़र नहीं आती ? अगर नहीं आती तो अफ़सोस की बात है। जिस्म पैदा हुआ, बढ़कर जवान हुआ, बूढ़ा हुआ, मर गया। ये तमाशे तो होते रहते हैं पर असल में तुम न कभी पैदा हुये, न कभी मरे, न कभी बालिग़ थे, न कभी बूढ़े थे। यह मरना जीना सिर्फ़ जिस्म के हैं। अगर सही ज़ात (व्यक्तित्व) को समझ लो, जब तक सिफ़ात (गुण) में अटके हो तब तक रसाई होना मुहाल है, क्योंकि सिफ़ात में नुक़्स (दोष) शामिल (सीमित) होने का है।

इल्म व अक़्ल, ज्ञान व ध्यान सब फ़ानी (नाशवान) हैं। इंसान कभी जाहिल (मूर्ख) है कभी आक़िल (बुद्धिमान), कभी नाक़िस (मूढ़) कभी कामिल (पूर्ण), कभी आमिल (अभ्यासी) कभी आलिम (विद्वान)। अक्ल गई दिवानगी आई, सेहत गई बिमारी आ गई मग़र ज़ात (जाति) (आत्म तत्व) तो जैसी थी वैसी ही है। उसको क्या सदमा पहुँचा। नाम की हविस (लालसा) इज्ज़त व दौलत की नमूद (दिखावा) और शोहरत की हविस, जब तक ये हैं वो नहीं है क्योंकि नज़र उनमें जमी है। जब तक नीचे की तरफ राग़िब (उलझे हुये) हो ऊपर नहीं देखते। और जब ऊपर देखने लगे तो वही है बस वही... और उसके सिवा यहाँ दूसरा है कौन ? ?

नादान कहते है बूंद दरिया में गिरी, दरिया हो गई। कहाँ की बूँद कहाँ का दरिया, कहाँ का गिरना और कहाँ का पड़ना, तुम न बूंद हो न

दरिया हो। यह निस्बती (तुलनात्मक) हालतें हैं। निस्बत (तुलना) जुज़बियात (आंशिकता) में है। जो असल के देखने वाले हैं उनको जुज़ (अंश) से क्या काम। अगर वह दरिया है तो तुम बूंद हो।

साफ़ साफ़ कहा जाये तो झगड़ा मचता है। सूफ़ी अलग नाराज़, पंथाई औ सलूक वाले अलग खफ़ा होते हैं। अगर वह हमसे जुदा (भिन्न) था या है तो बाहर क्यों नहीं तलाश की जाती, क्यों लोग अंदर (अपने अंतर में) तलाश करने की हिदायत (आदेश) करते हैं। क्या यह नहीं कहा जाता कि जबरूत, लाहूत, नासूत सब तुम्हारे भीतर में हैं राह भी अपने अन्दर बताई जाती है। एक सूफ़ी साहब (तंज़) का कलाम (कयक्ष–वचन) है:–

चश्म बन्दो गोश बन्दो लब ब बन्द।
गर न बीनी सिर्रे हक़ बर मन ब ख़न्द।।

अर्थः आँख को बन्द करो, कान को बन्द करो और होठों को बन्द कर लो, और इस पर भी असलियत न खुले तो मुझ पर हँसना। गुरु नानक साहब कहते हैं:–

तीन बन्द लगाय कर, सुन अन्दर टंकोर।
नानक सुन्न समाधि नहीं, नहीं सांझ नहीं भोर।।

अगर नाक, कान, आँख बन्द करने से वह नहीं मिलता है तो कहाँ मिलता है, बाहर या भीतर? अगर वह भीतर से मिलता है तो ज़ाहिर है कि वह हमारे अन्दर हमेशा से था और हम वही हैं जो पहले थे।

इस हालत के लिये पहले ही कहा गया है कि बग़ैर तलब के इश्क नहीं, बग़ैर इश्क के मार्फत नहीं, बग़ैर मार्फत के तौहीद नहीं, बग़ैर तौहीद के इस्तग़ना नहीं, बग़ैर इस्तग़ना के फ़ना नहीं और बग़ैर फ़ना के बक़ा नहीं। जिस इंसान के दिल के पर्दे चाक हो गये हैं या हो रहे हैं उसी के लिये है यह पैग़ाम (संदेश)। दरअसल ये बेशकीमती पैग़ाम ऐसे ही इंसान के लिये होते हैं।

आख़िर 'वह' (हस्ती) है क्या ?

वह क्या था, क्या है; न कभी जाना गया न जाना जा सकेगा। पैदाइश के सिलसिले में वह शुरू में एक था। एक से दो हुआ, दो से तीन, तीन से बेशुमार (असंख्य) और फिर कायनात (दुनियाँ) में फैल गया। और ये सिलसिला ख़त्म होगा तो बेशुमार से तीन, तीन से दो, और दो से एक होगा। मगर यहाँ पर कौन बिगड़ा और कौन सुधरा। उसमें तबदीली नहीं आई। इसी को बक़ा (पुनर्जीवन) कहते हैं। सब मिट जाते हैं। वह अमिट है, वही बाक़ी है और वहीं तुम्हारी ज़ात (असल) है।

इसकी मिसालें बहुत दी जा सकती हैं। समुद्र में लहरें उठती हैं। उठीं और उठ कर बैठ गई। अब उनका कहीं नामो निशान भी नहीं रहा। सूरज चमक रहा है, बेशुमार घड़ों में उसका अक्स पड़ रहा है। जो घड़ों को देखते हैं उनको ही सूरज हज़ारों जगह नज़र आ रहा है। तमाम अक्स भिन्न भिन्न घड़ों में उसी एक सूरज के तो हैं। उस एक सूरज के अलावा यहाँ कौन है।

आख़िर यह है क्या, कुछ समझ में नहीं आता। समझ में आये कैसे, नज़र कोताहबीन व ग़ैरियतबीन (कम व ग़लत देखती) है। किसी ने रस्सी देखी उसको सांप समझा, वह सांप हो गया। वह बचने को दौड़ता है। जब उसका दिल शांत हो गया, अब वह रस्सी है, सांप नहीं। इसी तरह यह संसार है। लालची आदमी ने सीप देखी, उसको चाँदी का भ्रम हो गया, जब उसको उठाया, दिल ठिकाने आया, चाँदी ग़ायब।

सवाल फिर वही रहा। दिल कैसे बिगड़ा ? जवाब यह है कि नज़र (दृष्टि) जुज़बियात (अंशों) की तरफ गई। नज़र को एक पहलू पर जमा दो। दूसरे पहलू आप ही ग़ायब हो जायेंगे। जुज़बियत (अंशों) से हट कर कुल यानी सम्पूर्ण की तरफ चले जाओ। इसी तरह ज्ञान व अज्ञान के तमाशे होते हैं और जब यह दोनों ओझल हो जाते हैं तब 'वही' रह जाता

है। जब तक हम ख़ुदी (स्वार्थ) व अनानियत (अहंभाव) के पंजे में फंसे हुये हैं तब तक मौत के मुँह में हैं क्योंकि अनानियत (अहंभाव) के पहलू हर समय बदलते रहते हैं और यही बदलना मौत है।

समुद्र में क्या चीज़ घटती बढ़ती है? लहरें या समुद्र? लहरों के लिये कहा जा सकता है, मगर समुद्र को क्या कहें। वह तो जैसा था वैसा ही है। इसी का नाम बक़ा है।

इसी तरह हक़ीक़त (सत्यता) के दरिया (नदी) में जब मौज उठती है उस समय जुज़बी (आँशिक) निग़ाह बना कर हैवान (पशु), इंसान (मनुष्य), फ़रिश्ते (देवता), सूर्य, चाँद, सितारे, सब कुछ देख लो, सुन लो। यह आते जाते, मरते खपते, बनते बिगड़ते रहते हैं। मगर जब कुल (सम्पूर्ण) की तरफ नज़र जायेगी, जुज़बियत (अंशों) का तमाशा ग़ायब हो जायेगा और फिर कुल का ख़्याल भी जाता रहेगा। वही 'बक़ा' है और इसको मौत का खतरा नहीं है। क्योंकि बक़ा में निसबती (तुलनात्मक) हालतें नहीं हैं।

सार तत्व का सारांश

अब फिर शुरू से आख़ीर तक की मंज़िलों को याद करने के लिये इशारे (संकेत) दिये जा रहे हैं:–

हममें तलब (इच्छा) पैदा हुई, इश्क (प्रेम) आया। इश्क से इर्फ़ान (ज्ञान) पैदा हुआ फिर तौहीद (एक भाव) और वहदानियत (एकपने) का ख़्याल हमारे दिल के अन्दर पैदा हुआ। फ़िर हममें इस्तग़ना (उपरामता) भी आई। उसी में फ़ना (लय) भी हुये और उसी से बक़ा (पुनर्जीवन) में क़ायम (स्थित) हुए। बाहर से कुछ किया न धरा। कुछ न था कुछ न होगा।

मगर इस 'अहं' को न कहना चाहिए बल्कि चुपचाप रहना चाहिए, नहीं तो ग़लत–फ़हमी होगी। कहने को तो बस इतना ही काफ़ी है...

एक कहूं तो है नहीं, दूजा कहूं तो गार।
जैसा है वैसा रहे, कहे कबीर विचार।।

यही बक़ा है, यही सत्य है, सत्य नाम है, सतलोक है।

फ़नाइयत (लय अवस्थायें) तीन होती हैंः–

1. फ़नाफिल शेख़ (गुरु में लय होना)

2. फ़नाफ़िल रसूल (अवतार में लय होना)

3. फ़नाफ़िल अल्लाह (ईश्वर में लय होना)

संतमत के उसूलों (सिद्धान्तों) को मानने वालों में जो ग़लतफ़हमी (भ्रम) फैली हुई है उसको दूर करने के लिये और जो रूहानियत (अध्यात्म) के शौक़ीन हैं उनको फ़ायदा पहुँचाने की ग़रज़ से यह लेख लिखा गया। लोग फ़ायदा उठा सकेंगे तो समझा जायेगा मेहनत ठिकाने लगी।

बग़ैर गुरु में फ़नाइयत के हासिल किये (लय हुए) रसूल (अवतार) और परमात्मा में फ़नाइयत (लय) नहीं हो सकती।

गुरुदेव समझने की तौफ़ीक़ (शक्ति) दें।

⌘⌘⌘

अमृत–वचन

1. जितने मत हैं उतने ही मार्ग हैं। अपने मत पर निष्ठा रखनी चाहिए, पर दूसरों के मत की निंदा नहीं करनी चाहिए।

2. सिद्धियाँ ईश्वर प्राप्ति के मार्ग में बड़ा विघ्न हैं।

3. विवेक और वैराग्य के बिना शास्त्र ज्ञान व्यर्थ है।

4. जिस समय ईश्वर प्रेम की प्रचंड तरंगें बिना किसी निमित्त के मनुष्य के मन में उठने लगती हैं, उस समय उन्हें प्रयत्न करने पर भी पीछे नहीं हटा सकते।

– श्री रामकृष्ण

प्रवचन गुरुदेवः डा. श्रीकृष्ण लाल जी महाराज

संतमत में उपासना का तरीका क्या है ?

(1)

संतमत में सब से पहली बात ईश्वर पर विश्वास है। वह सत–चित्त आनन्द का भंडार है। वह हमेशा से है और हमेशा रहेगा। अगर ईश्वर में विश्वास नहीं है तो कोई भी आदमी संतमत में दाखिल होने लायक नहीं है।

यह ख्वाहिश कि हम अपने को या ईश्वर को जान लें या हम हमेशा हमेशा की शांति पा जायें सिर्फ उन्हीं आदमियों में होती है जिनमें कुछ Consciousness (जागृति) पैदा हो गई है। जानवरों में यह ख्वाहिश नहीं होती। उनके अंदर सोच विचार की शक्ति नहीं होती। उनकी ज़िन्दगी एक तरह से सीमित होती है। खाना, सोना और मैथुन कर लेना या अपनी ज़िन्दगी की ज़रूरतों को पूरा करना, यहाँ तक उनकी बुद्धि की सीमा (Limit) होती है। जानवरों की बुद्धि का विकास नहीं होता इसलिये उनमें Consciousness (जागृति) नहीं होती। आदमी की बुद्धि का विकास होता रहता है। उसमें सोच विचार की शक्ति होती है। उसकी लगातार यह ख़्वाहिश रहती है कि मुझे सुख मिले, दुख से किस तरह बचा जाये, वह हर चीज़ का ज्ञान चाहता है, उसे परस्पर प्रेम, स्नेह की चाहना होती है।

लेकिन आदमी आदमी में फर्क होता है। कुछ ऐसे लोग होते हैं जिनकी बुद्धि कम विकसित होती है, वे कुछ जानवरों के ही से खवास रखते हैं। खाना–पीना, सोना, मैथुन कर लेना और केवल थोड़े बहुत सांसारिक और इंद्रियों के सुख के लिये कोशिश कर लेना ही उनकी बुद्धि के विकास की हद होती है। लेकिन जो लोग इससे भी आगे की सोचते हैं, जिन्हें इन्द्रिय सुख या सांसारिक चीज़ों का सुख पायेदार (स्थायी) नहीं

मालूम होता, जिन्हें हमेशा रहने वाले सुख और शांति की तलाश की ख़्वाहिश होती है वे ही असली मुतलाशी (खोजी) और संतमत में शामिल होने के अधिकारी होते हैं।

यह सुख और आनन्द हासिल करने की इच्छा मनुष्य में इसलिये होती है कि वह ईश्वर का अंश है। जिस तरह समुद्र और उसकी बूँद, आग और उसकी चिंगारी, इसी तरह ईश्वर अंशी है और मनुष्य उसका अंश है। जो ख़्वास (Qualities) अंशी में हैं वही उसके अंश में हैं सिर्फ़ मिक़दर (Quantity) का फ़र्क है। मनुष्य की आत्मा ईश्वर का अंश है, वह हमेशा अपने असली प्रीतम यानी ईश्वर से मिलने के लिये तड़पती है। लेकिन वह जन्म जन्मानतरों के संस्कारों के गिलाफों से ढकी हुई है, उसको परवरिश नहीं मिलती, इसलिये वह कमज़ोर हो गई है। तीन शरीर होते हैं Physical (स्थूल), Mental (सूक्ष्म), और Spiritual (कारण)। जब तक इन तीनों को ग़िज़ा नहीं मिलेगी तब तक आत्मा की परवरिश नहीं होगी। जब तक इन तीनों की परवरिश नहीं होगी आदमी सुखी नहीं होगा।

ईश्वर प्रेम का भण्डार है। वह प्राणी मात्र से अपनी औलाद की तरह प्रेम करता है। अगर आप उसकी तरफ़ एक कदम बढ़ायेंगे, वह आप की तरफ़ सौ क़दम बढ़ायेगा, मगर उससे मिलने की सच्ची चाह आपके अन्दर होगी तब। चाह सब में है, चाहे आप कोई भी पेशा करते हों, सब इसी के लिये है कि सुख प्राप्त हो। लेकिन जो लोग सच्चे रास्ते को पकड़ लेते हैं उन्हें रूकावट नहीं होती, उन्हें दुनियां को छोड़ने में दुख नहीं होता, जब इसे छोड़ कर जाते हैं, खुशी से जाते हैं और दुनिया में आने का उनका मकसद पूरा हो जाता है।

लोगों में चाह तो है लेकिन तरीक़ा और रास्ता नहीं मालूम। इसी के लिये सन्त आते हैं, ईश्वर की तरफ़ से भेजे हुये, उसके प्यारे रास्ता दिखाने और तरीक़ा बताने आते हैं। उनका काम खुद कुछ हासिल करना नहीं होता, उन्हें सब कुछ प्राप्त होता है, वे ईश्वर के निज पुत्र होते हैं।

उन्हें दुनियां में आकर दुहैरा काम करना पड़ता है। जैसे कोई प्रोफैसर हो और उसे a, b, c कच्ची, पक्की कक्षाओं को पढ़ाना पढ़े तो पहले उन्हें उस`जंहम (स्तर) पर आना पड़ेगा जिस पर वे बच्चे हैं जिन्हें पढ़ना सीखना है। इसी तरह सन्तों को पहले उस stage (स्तर) पर आना पड़ता है जिस पर जीव है। इस काम में वे माया की मदद लेते हैं, यानी अपने जीवन को वे दुनियाँदारों का सा बना लेते हैं। इसमें उनकी अपनी ग़रज़ नहीं होती। उन्हें इन्द्रीय भोग की इच्छा नहीं होती, वह सिर्फ जीवों के उद्धार की इच्छा लेकर आते हैं।

ऐसे सन्तों से फ़ायदा सबको ही होता है, लेकिन ख़ास फ़ायदा उन्हीं जीवों को होता है जो दरअसल अधिकारी होते हैं। अधिकारी कौन ? जो हज़ारों जन्मों से माया जाल में फंसे चले आ रहे हैं, टक्करें खाते हैं, परेशान हैं और उससे निकलना चाहते हैं। उनकी हालत उस हिरन की तरह होती है जो रेगिस्तान में पानी के लिये मारा–मारा फिरता है और मृग तृष्णा में फंस जाता है, पानी नज़र आता है पर है कुछ नहीं। इसी तरह से हम इंद्रियों में आनन्द समझते हैं, भौतिक सुख में सच्चे आनन्द को ढूँढना चाहते हैं, लेकिन आख़िर में वह सुख क़ायम नहीं रहता, दुख ही दुख नज़र आता है। मकान बनाया, कल को बच्चों की शादी की, फिर मौत आ गई और फिर जन्म धारण करके वही पुराना सिलसिला चल पड़ा। मनुष्य इस तरह बरतते–बरतते disappointed (निराश) हो जाता है। जहाँ सुख ढूंढता है वहाँ धोखा ही पाता है। तब उसका मन ईश्वर की तरफ रागिब होता है। वह समझने लगता है कि कोई ऐसी शक्ति ज़रूर है जो सृष्टि, पालन और संहार करती है, जो सब सुखों का स्रोत है, जो हमेशा क़ायम रहने वाली है। तब वे ईश्वर में विश्वास करने लगते हैं। जो ईश्वर को मानते हैं और हर जगह उसको मौजूद जानते हैं वे ही अधिकारी हैं।

(2)

संतमत बाहरी चीज़ों में विश्वास नहीं रखता। देवी देवताओं की पूजा का क़ायल नहीं है क्योंकि ये दुनियां दे सकते हैं, मोक्ष नहीं। संतमत में दुनियां छोड़नी पड़ती है। दुनियां की हर चीज़ से उपराम होना होता है। तीन दुनियां हैं। (1) दयाल देश, (2) ब्रह्मांड और (3) पिण्ड (मनुष्य शरीर)। कोई भी देवी देवता या जानवर उस ईश्वर की बनावट का नहीं है, सिर्फ़ आदमी ही एक ऐसा जीवधारी है जो उसका नमूना है, वैसे ही गुणों वाला है, अन्तर केवल quantity (मात्रा) का है। अगर हम अपने आप को दुनियां के बंधनों से छुड़ाकर आज़ाद बना लेते हैं तो हम में वही शक्ति ज़ाहिर हो जाती है जो ईश्वर में है। बाहर उसे ढूंढने की ज़रूरत नहीं है। सारा ब्रहाण्ड, देवी देवता, ईश्वर तुम्हारे अन्दर हैं। अन्दर की सफाई करो।

(3)

तरीक़ा क्या है ? – ऐसे शख़्स की तलाश करो जिस ने अनुभव कर के उसे जान लिया है। जब ऐसे शख़्स को ढूँढ लोगे तो वह तुम्हें अनुभव करा देगा। वायदा आगे का नहीं करेगा। इस हाथ दो उस हाथ लो, मगर कीमत देनी पड़ेगी। मालिक को भला कौन कीमत दे सकता है ? जिसने यह दुनियां बनाई, ब्रह्मांड बनाये, सैंकड़ों दुनियायें बनाई, किसी ने उसका पार नहीं पाया, उसे भला क़ीमत कौन दे सकता है। उसे कीमत के बजाये नज़राना दो। नज़राना क्या है ? दोनों जहान उसका नज़राना हैं। दुनियां का और स्वर्ग का, तीनों लोकों के आनन्द का नज़राना दे दो और वह तुम्हें अभी मिल जायेगा। जितनी देर इस नज़राने को देने में लगेगी उतनी ही देर से मिलेगा। तुम फँसे हो इंद्रिय आनन्द में, उसमें वह नहीं मिलेगा। संतमत बताता है ''उसे अपने अन्दर खोजो'' वह तुम्हारे अन्दर है, छिपा हुआ है, उसे खोजो। नज़राना उसे अदा कर दो, वह तुम्हें ज़रूर मिल जायेगा।

पन्थ वह है जिस पर पन्थाई चले। अगर चलना रूक गया तो फिर

पंथ कहाँ है। बगैर चले मंज़िल तक कैसे पहुँचेगा। चलना क्या है ? उससे प्रेम करो, उसे अपने अंदर देखो। और चीज़ों से अगर प्रेम है तो उसे तुम धोखा नहीं दे सकते। बच्चा बचपन में अपनी माँ के आश्रित रहता है, वह अपनी बुद्धि नहीं लड़ाता इसलिये बेफ़िक्र रहता है। वही जब बड़ा होता है तो माँ बाप की परवाह जाती रहती है, अपनी बुद्धि से काम लेने लगता है और दुनियां के झंझटों में फँसता है। इसी तरह तुम ईश्वर के बच्चे हो, वह तुम्हारा सच्चा माँ–बाप है। अगर तुम अपनी बुद्धि लगाते हो तो उसे क्या। उस पर dependent (आश्रित) रहो।

संतमत में गुरु को ईश्वर रूप मानते हैं। मुसलमानों में जो इज़्ज़त हज़रत मौहम्मद साहब की है वही अपने हल्क़े में गुरु की है। जिस्म से फ़र्क ज़रूर है लेकिन इख़लाक और रूहानियत से दोनों एक हैं। इसी तरह भगवान कृष्ण। जो औतार शुरू में आये और अगर उनका सिलसिला अभी तक क़ायम है तो वह ज़ंजीर की तरह ऊपर तक जुड़ा हुआ है। अगर एक कड़ी को हिलाओ तो ऊपर तक सारी ज़ंजीर हिल जाती है। एक आदमी ऊँट की नकेल पकड़ कर चलता है। पहले ऊँट की दुम दूसरे ऊँट की नकेल से बँधी हुई होती है, फिर तीसरे की, फिर चौथे की। इस तरह सैंकड़ों ऊँट एक ही नकेल से जुड़े चले जाते हैं। संतमत में आदि गुरु और मौजूदा गुरु का आन्तरिक सम्बन्ध इसी तरह जुड़ा हुआ हो तो मौजूदा गुरु की भी वही हालत होती है, जो आदि गुरु की, अन्तर केवल शरीर का होता है। इसको निस्बत क़ायम हो जाना कहते हैं यानी आदि गुरु की आत्मा मौजूदा गुरु में आ जाती है। संतमत में ज़ाहिरी अच्छाई और बुराई को नहीं देखते। यहाँ की शिक्षा यह है कि गुरु को आधार मान कर रास्ता चलते हैं। किसी को आधार मानना ज़रूरी होता है। अरिथमेटिक या एलजेबरा के सवाल हल करने के लिये भी X मानना पड़ता है। जब सवाल निकल आता है तब उसे मिलान कर लेते हैं।

दो तरह के लोग होते हैं। एक तो वे जो भोली बुद्धि के हैं जैसे स्त्रियाँ,

बच्चे और बेपढ़े या कम पढ़े लिखे लोग। इन्हें जल्दी विश्वास आता है लेकिन उतनी जल्दी जाता भी रहता है। उनकी बुद्धि परिपक्व नहीं होती इसलिये उनमें स्थिरता कम होती है। दूसरी तरह के वे हैं जो पढ़े लिखे हैं, बुद्धिमान हैं, जो किसी चीज़ को बिना सोचे समझे मानने को तैयार नहीं होते। ऐसे लोगो को विश्वास देर से आता है पर जब आ जाय तो क़ायम रहता है।

विश्वास के साथ-साथ मन की सफाई ज़रूरी है। आदमी बुद्धिमान है और विश्वासी भी है अगर मन साफ नहीं है तो वह Impression (छाप) ग़लत लेगा और बुरी जगह फेंक देगा। Educated Class (पढ़े लिखे लोग) बुद्धि वाले हैं, बुद्धि से ईश्वर को समझना चाहते हैं, मगर जो चीज़ बुद्धि को भी प्रकाश या जीवन देती है वह बुद्धि से समझने की नहीं है, वे उसे कैसे समझ सकते हैं। ईश्वर को अनुभव से जाना जाता है। बहुत से लोग चाहते हैं कि आते ही उन्हें एक दम अनुभव हो जाय। लेकिन इसका अहल (पात्र) बिरला ही कोई होता है, जैसे स्वामी विवेकानन्द।

मन और बुद्धि दोनों को साथ ले कर चलो। दोनों को साफ करो तब रास्ता चल सकोगे। जो साधन या बात बताई जाये उसे समझो, तजुर्बा करो और न समझ में आये तो पूछो। जब तक अभ्यास शुरू नहीं करते हो तब तक हर बात को समझने की कोशिश करो, मगर ग़लत मत समझो। जहाँ समझ में न आवे वहीं रूक जाओ, उसे अपन अक्ल का क़सूर समझो और इंतज़ार करो, मगर रहबर (गुरु) को धोखेबाज़ न समझो। उसकी तुमसे क्या ग़रज़ है ?

मन की शुद्धि से क्या ग़रज़ है ? मन का साधन है कि न किसी से प्रेम हो और न ही किसी से बैर। Balanced (संतुलित) हालत हो। जो चीज़ या बात जैसी है वैसी ही नज़र आवे। अगर मन पर कोई ग़िलाफ़ होता है तो उसके असर से चीज़ है वैसी नज़र नहीं आती, वह उस ग़िलाफ़ का सा अक्स लिये होती है। शीशे के अन्दर से जो रोशनी छन कर आती

है वह शीशे का रंग लिये होती है। सब तरफ से तवज़्ज़ो हटा कर ईश्वर की तरफ लग जाये। बुद्धि शुद्ध हो जाये, अपनी Life (जीवन) का Goal (लक्ष्य) समझ में आ जाये। गुरु केवल बुद्धि को शुद्ध करता है जिससे वह ईश्वर के ध्यान में लगे। वह मन को स्मंक करे रास्ता दिखाये, न कि मन के कहने में चले। मेरा–तेरा दूर करो, उसके बाद अन्दर से जो फैसला होगा वह ठीक होगा। सूफ़ी लोग क़ल्ब की सफ़ाई (मन की शुद्ध ता) करते हैं। इसीलिये निष्पक्ष मन से सब बात को समझो, अभ्यास करो और ईश्वर को अपने अन्दर ढूँढो।

(4)

हमारे यहाँ सब धर्मो के अवतारों का इज़्ज़त करते हैं, किसी से द्व ेष नहीं करते। उनको सबसे बड़ी हस्ती मानते हैं। पर अब इस मौजूदा वक़्त में आपका उनसे क्या वास्ता? वे तो अपना काम पूरा कर के जा चुके इसलिये उनसे कोई फ़ायदा न होगा। इसको इस तरह समझ लो कि कोई मरीज़ रहता तो गाँव में और रटता है हकीम लुकमान या देहली के हकीम अजमल खाँ को जो अब मौजूद नहीं हैं। उसे तो गाँव के या नज़दीक के ही हकीम से मदद लेनी चाहिए। जो उसके पास जिस्म से मौजूद हो उसी से फ़ायदा होगा।

संतमत दुनियां नहीं बनाता। जिसकी दुनियां बनी उसका परमार्थ बिगड़ा और जिसकी दुनिया उजड़ी उसका परमार्थ सुधरा। अगर दरअसल परमात्मा से प्रेम है तो वह जैसे चाहे रखे, उसमें खुश रहना चाहिए। अपनी औलाद के लिये या दुनिया के लिये ईश्वर से प्रेम करना, प्रेम नहीं मक्कारी है। आशिक़ देता है, लेता नहीं। हम तो तुझको प्यार करते हैं, सब कुछ देते हैं। चाहते क्या हैं? कुछ नहीं, तू खुश रह।

तुझे सामने बैठा कर मैं यादे खुदा करूं।
तू मुझे देखे न देखे मैं तुझे देखा करूं।।

जो ईश्वर से सच्चा प्यार करते हैं वे मोक्ष भी नहीं चाहते क्योंकि उसमें

भी ग़रज़ है। तुझसे प्यार भी नहीं मांगते। बस तेरी याद रहे और उसी में जल कर ख़ाक हो जायें। जहाँ रखे, चाहे किसी हाल में रखे, मगर तू खुश रहे। दोनों जहान उसका नज़राना है। गरदन काट कर रख दो तब उसे पाओगे। यह प्रेम का रास्ता है। इसमें सब कुछ कुर्बान करना हैः–

"प्रेम पियाला जो पिये सीस दच्छिना देय"

गरदन काट कर रखने का क्या मतलब है ? अपनी कोई ख़्वाहिश बाकी न रहे। जो ख़्वाहिश हो वह प्रीतम के लिये हो। ईश्वर जैसा चाहे वैसा रखे। अपनी हस्ती मिट जाये। मरने से या गरदन काट कर रख देने से यह ग़रज़ नहीं है कि शरीर टूट जाये। नहीं, उस मालिके कुल के सिवाय और कोई ख्याल न रहे। जितना प्रेम एक माँ बेटे से करती है, पत्नी पति से करता है, व्यभिचारिणी स्त्री अपने मित्र से, जब ये तीनों प्रेम एक हो जायें वैसी मौहब्बत परमात्मा से हो। मौहब्बत इस वक़्त कितनी बटी हुई है, उसे बटोरो, इकठ्ठी करो और मालिक की तरफ लगा दो। यह मुश्किल है और बहुत मुश्किल। एक रोज़ में नहीं हो सकता। मगर अभ्यास से धीरे धीरे और गुरु कृपा से सहज हो जाता है।

ईश्वर सबका कल्याण करें।

(दि. 26.10.1963, सिकंद्राबाद)

❑❑❑❑

परमसंत डा.श्रीकृष्ण लाल जी महाराज के अनमोल वचन

साधन

हमारा मत विशाल हृदयता सिखाता है। घर वालों से प्रेम करो, पड़ोसियों से प्रेम करो, मुल्क वालों से प्रेम करो, संसार के सब मनुष्यों से प्रेम करो और जीवमात्र, वनस्पति स्थावर–जंग्म सबसे प्रेम करो। सब में एक ही परमेश्वर समाया हुआ है जो प्रेम का भंडार है। वही हमारा सच्चा गुरु है। सब से प्रेम करते हुये तुम भी एक दिन प्रेम रुप हो जाओगे और प्रियतम परमात्मा में समा जाओगे।

❖❖❖❖

जब किसी पर ईश्वर कृपा होती है और वह उसे पाना चाहता है तो उसके बंधन टूटने लगते हैं। सब से पहले उसकी प्यारी से प्यारी चीज़ें छीनी जाती हैं। दुनियादार इसे देख कर रोते हैं, और सन्त खुश होते हैं– हे प्रभु! कितना अच्छा है इसे ले कर तूने मेरा बंधन काट दिया। इस तरह हर कदम पर इम्तहान होता है। बग़ैर इम्तहान के कोई उसे प्राप्त नहीं कर सकता। हर एक चीज़ की कुर्बानी करनी पड़ेगी। अगर उसे पाना चाहते हो तो दुनिया की चीज़ें क्या, गर्दन तक काट कर देनी पड़ेगी।

❖❖❖❖

साधारण मनुष्य के लिये, जो दुनिया में फँसा हुआ है, ईश्वर तक पहुँचने के लिये सब से सरल उपाय यही है कि उसके नाम का उच्चारण बराबर किया जाये। उसके नाम का उच्चारण करने से वह ईश्वर से मिला देता है जो उसके दिल में रहता है। जितना ही वह उसके पवित्र नाम का उच्चारण करता जायेगा वह अपने अन्दर उस परमात्मा के निकट पहुँचता जायेगा। अपने अन्दर से बुराईयों के निकालने, आनन्द और ईश्वर को प्राप्त करने का इससे आसान तरीक़ा कोई और नहीं है।

❖ ❖ ❖ ❖

एक ही कर्म फँसाता है और वही निकालता है। अगर उस कर्म के करने में अपने आप को शामिल कर दोगे तो फँसायेगा और अगर उसे ईश्वर का समझ कर और ईश्वर की सेवा समझ कर करोगे तो वही कर्म बंधन से छुड़ायेगा।

❖ ❖ ❖ ❖

गंगा जल कितना पवित्र है, कभी सड़ता नहीं है। मगर किसी तरह अगर वह दूर जा पड़े और बीच में एक मेढ़ सी बन जाये तो उसे गड्ढे का पानी कहते हैं, वह गंगा से अलग हो जाता है तो सड़ने लगता है। तुम भी गंगा के पानी हो, लेकिन गड्ढे में पड़े सड़ रहे हो, क्योंकि ''मैं'' की मेढ़ बीच में बन गई है। तुम उसी सत्पुरूष दयाल का अंश हो जो सर्वशक्तिमान है, सर्वव्यापी है, लेकिन मन की वजह से, मेरे तेरे पन की वजह से तुम्हारे और उसके बीच में एक मेढ़ बन गई है। उसको तोड़ दो, तुम और वह एक हो जाओ। यह बिना गुरु की शरण लिये, बिना उसके आदेशों का पालन किये और बिना सत्संग के नहीं होगा।

❖ ❖ ❖ ❖

सन्यास लेकर जंगल में जा रहने से मन नहीं मरता क्योंकि वहाँ वे भोग के सामान नहीं हैं जिनसे मन लुभाया जा सके या जिनका प्रभाव मन पर सीधा पड़े। जहाँ भोग की वस्तुएं सामने आईं कि सन्यासी का मन विचलित होने लगता है। इसीलिये वास्तविक शांति गृहस्थ आश्रम में है।

❖ ❖ ❖ ❖

जो अज्ञानी हैं वे बिना सोचे समझे करते हैं, उनमें पूर्ण अज्ञानता भरी पड़ी है। जो ज्ञानी हैं, वे भी बिना सोचे समझे करते हैं, वे ईश्वर से मिल कर एक हो चुके हैं और मालिक यानी ईश्वर अक़्लेकुल (all wisdom) यानी सम्पूर्ण ज्ञान है, उसको सोच विचार की ज़रूरत नहीं पड़ती, उसके

सब काम स्वतः स्वाभाविक रूप से होते रहते हैं। जो सोचते रहते हैं, यह करें या वह करें – यह बीच वालों की हालत है। यही कशमकश (संघर्ष) है। इसी को देवासुर संग्राम भी कहा गया है। अच्छी और बुरी वासनाओं में युद्ध यही कहलाता है। मन को लालच है दुनिया का और आत्मा को लौ लगी है अपने प्रियतम के चरणों में लिपट कर एक हो जाने की। दोनों अपनी–अपनी तरफ खेंचते हैं और यही कशमकश ़(जतनहहसम) होती रहती है। जो इसमें कामयाब हो गया, यानी जिसने मन के चुंगल से अपनी आत्मा को न्यारा कर लिया, उसने समझो हीरा पा लिया।

❖❖❖❖

पहले ध्यान आता है, बाद में सुमिरन। सुमिरन दिल से होता है। 'ओम राम' आदि सभी नाम उसी के हैं पर गुरु जो नाम देता है उसमें ही चित्त देना चाहिए। उससे लाभ होगा। जिस नाम में शक्ति नहीं है उससे लाभ नहीं हो सकता। साधक के लिये गुरु द्वारा बताये गये या दिये गये नाम में ही शक्ति है।

❖❖❖❖

समय थोड़ा है और हमें सीमित शक्ति मिली है जिसे हम दुनियावी कामों में खर्च कर देते हैं। वह शक्ति हमें मिली तो है अपनी आत्मा के ऊपर से परदों को उतारने के लिये, आत्मा का साक्षात्कार करने के लिये, परन्तु वह खर्च होती है अन्य सांसारिक बातों में। गुरु से मदद माँँगो, शक्ति माँँगो, व तुम्हारा मार्ग दर्शन करेंगे और परमात्मा से जो शक्ति का भंडार है शक्ति लेकर तुम्हारी आत्मा को बलवान बनायेंण्गे जिससे तुम मन को अपने अधीन बना सको। बिना गुरु की सहायता के, बिना उनसे अधिक शक्ति प्राप्त किये कोई बुरी आदत नहीं छूट सकती। लेकिन गुरु से शक्ति मिलती है केवल उनको जो उनकी इच्छानुसार कार्य करते हैं, जो उनके आदेशों पर चलते हैं।

❖❖❖❖

प्रवचन परमसंत डॉ. करतार सिंह जी साहब

गुरु के वचन–व्यवहार द्वारा आत्म–साक्षात्कार

'सबसे पहले स्थूल से स्थूल को यानी शिष्य को गुरु के बाहरी शरीर से प्रेम होता है और स्थूल सेवा पसन्द करता है जैसे पांव दबाना, नहलाना–धुलाना, कपड़े साफ़ करना इत्यादि।'

ईश्वर प्राप्ति के लिये एक ही तरीका नहीं है अनेकों तरीके हैं। संतमत में गुरु–शिष्य का जो सम्बन्ध है वही साधना है। शुरु–शुरु में जब जिज्ञासु किसी महापुरुष की सेवा में जाता है, उनकी रहनी–सहनी को देखता है, उनके विचारों से, व्यवहार से प्रभावित होता है, तो उनके चरणों की ओर वह खिंचता चला जाता है। प्रत्येक व्यक्ति के भीतर में परमात्मा मौजूद है। प्रत्येक व्यक्ति के भीतर में आत्मा के गुण हैं, वे ही गुण व्यक्ति को, जिज्ञासु को भाते हैं जो गुण गुरु के हैं।

इस प्रकार शुरु में गुरु का आश्रय लेता है जिज्ञासु। वो गुरु की सेवा करता है। पहले शरीर की सेवा करता है, उनके पाँव दबाता है, उनके कपड़े धो देता है। इसी में वो आनन्द लेता है– समझता है कि यही सब कुछ है। इतिहास में उदाहरण है, लक्ष्मण जी भगवान राम की सेवा में रहे। बाहरी सेवा करते रहे। उनको भगवान के चरणों में ही रहना पसन्द था। जब भगवान को चौदह वर्ष का वनवास मिला तो लक्ष्मण जी ने कहा कि मैं भी साथ चलूँगा। इसी तरह हनुमान जी भी भगवान के चरणों में ही प्रमुदित रहते थे। उन्हीं के पास बैठे आनन्द विभोर रहते।

परन्तु यह सब शुरु–शुरु में शरीर या मन की सेवा है। यह मन की भक्ति है। यह अंतिम चरण नहीं है। जैसे–जैसे व्यक्ति के संस्कार हैं, जैसे–जैसे उसकी प्रगति हुई है वैसे ही वो साधना करता है – उसी में वो

संतुष्ट होकर रह जाता है। इस कारण अनेकों लोग अपने रास्ते से गुमराह हो जाते हैं। उनको यदि सच्चा गुरु नहीं मिलता या भीतर से परमात्मा की कृपा से उन्हें प्रेरणा नहीं मिलती तो वे पहले ही चरण में फँसे रहते हैं। शुरु में बड़ा आनन्द आता है सेवा करने में, भजन आदि गाने में – यह सब मन की भक्ति है। यह अंतिम भक्ति नहीं है। इसको हम योग नहीं कह सकते। मैं किसी की आलोचना नहीं करता न ही गुरुदेव किसी की प्रतिक्रिया करते थे। पूज्य गुरुदेव हमें सचेत करने के लिए बता रहे हैं कि प्रथम चरण जो साधना का है वह शारीरिक सेवा है जो हाथ–पाँव से करते हैं।

हमें यहीं तक अपने आपको ठहराना नहीं है। अपने लक्ष्य को भुलाना नहीं है। लक्ष्य बहुत ऊँचा है एवं विशाल है। बहुत लम्बा रास्ता है, मंजिल बहुत दूर है। कई लोगों को हम सेवा करने से मना करते हैं तो वे नाराज हो जाते हैं कि हम उनसे नाराज हैं। नहीं, ऐसी बात नहीं है। सेवा वो है और लक्ष्य वो है जिसकी पूर्ति के पश्चात् हमारा एक भी संस्कार भीतर में न रहे। यदि संस्कार रह जाते हैं तो यह जन्म–मरण का चक्र चलता ही रहेगा। साधना वही फलीभूत होती है जहाँ मोक्ष मिलता है, स्वतंत्रता मिलती है। स्वतंत्रता का अर्थ है कि हमारे जन्म–जन्मांतरों के जो बन्धन हैं उनसे मुक्ति पाना, तीन गुणों – सत्, रज, तम – के बंधनों से प्रत्येक मनुष्य बंधा हुआ है, उनसे मुक्त हो जाये।

आप भीतर में अपने आपको टटोलें। कोई तमोगुण में फँसा हुआ है, कोई राजसिक गुण में, तो कोई सात्विक गुण में, सत्य में, यानी आत्मस्थित कोई–कोई व्यक्ति होता है। किसी को कान का रस है, किसी को जिव्हा का रस है। भिन्न–भिन्न रसों में लोग फँसे हुए हैं। स्वतंत्र व्यक्ति, जिसकी आत्मा पर से सब आवरण उतर गये हैं, जो आकाश की तरह निर्मल हो गया है, वो हाथ–पाँव की सेवा तो करता है परन्तु उसको वो अंतिम चरण नहीं समझता। वो और आगे बढ़ता है। जिस व्यक्ति ने

अंतिम सीढ़ी को तो पकड़ लिया परन्तु प्रथम चरण नहीं चढ़ा, तो उसकी साधना पक्की नहीं होगी। जिस व्यक्ति ने भक्ति की साधना नहीं की वो ज्ञान की साधना में परिपक्व नहीं हो सकता।

जीवन के चार आश्रम हैं – ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास। कोई–कोई व्यक्ति जिसके पिछले संस्कार उत्तम होते हैं, वो बचपन में ही सन्यासी हो जाता है व सफलता प्राप्त करता है।

परन्तु प्रत्येक व्यक्ति यह चाहे कि वह सन्यासी हो जाये तो वह बनना भी चाहे तो नहीं बन सकता। सन्यासी के अर्थ हैं सब कुछ खो बैठना। सर मुड़वा देते हैं। सर मुड़वाने के अर्थ हैं कि कहीं भी कोई आसक्ति या लगाव न रहे। मन फँसा न रहे। यहाँ तक कि उसे अपने नागरिक अधिकार (सिविल राईट्स) यानी माता–पिता की जायदाद को अपनाने के लिए भी कानून वंचित कर देता है। गेरुए कपड़े पहनते हैं – अग्नि का रूप है जो सब कुछ भीतर में से व बाहर से जला देती है। ख़ाक बना देती है, राख बना देती है। अपनत्व रहे ही नहीं – किसी भी व्यक्ति या वस्तु से, परमात्मा ही परमात्मा रहे। तो पक्का सन्यासी वही बन सकता है जो पहले तीन चरणों से (तीनों आश्रमों से) गुज़र कर जाता है।

इसी तरह आत्मा की अनुभूति की स्थिरता के लिये ज़रूरी है कि पहले भक्ति का आश्रय लिया जाये। कल्पना करें कि भगवान राम प्रसन्नता की मुद्रा में बैठे हैं। हनुमान जी सेवा में प्रसन्न मुद्रा में बैठे हैं। हनुमान जी से पूछते हैं कि उनका स्वरूप क्या है। हनुमान जी हाथ जोड़ कर कहते हैं कि ‘‘भगवन आपसे क्या छिपा है ? आप सब कुछ जानते हैं, आप यह क्या प्रश्न कर रहे हैं ?’’ भगवान कहने लगे कि ‘‘नहीं, आज तुम मुझे बताओ कि तुम कौन हो ?’’ तो जब भगवान ने बार बार पूछा तो हनुमान जी हाथ जोड़ कर कहने लगे कि ‘‘हे प्रभु, जब मैं आपकी हाथ पाँव से सेवा करता हूँ तो मेरी सुरति शरीर पर होती है, मैं आपका सेवक होता हूँ। जब मेरी सुरति आपके गुणों की तरफ होती है, मेरा मन आपके गुणों की ओर द्रवित होता है, उस वक्त मैं भक्ति करता हूँ और

मन के स्थान पर होता हूँ। जब भक्ति करता हुआ शरीर, मन, बुद्धि से ऊपर उठता हूँ तो अनुभव करता हूँ कि मैं आत्मा हूँ व मेरा मन व सुरति उस आत्मा में लय हो जाते हैं। उस समय मैं आत्मिक अवस्था अर्थात ज्ञान अवस्था में हूँ।

ज्ञान का अर्थ यह नहीं है कि बुद्धि से जान लेना कि मैं आत्मा हूँ। नहीं अपितु वैसा ही बन जाना। वैसे ही आत्मा में स्थिर होना, परमात्मा में स्थिर होना, लय होना है। शास्त्र इसी को ब्रह्मविद्या मानते हैं। शेष सब अविद्या है। शेष सब अज्ञान है। ज्ञान से ही स्थितप्रज्ञ होना, ज्ञान से आत्मा में स्थिर होना है। भगवान बुद्ध का कथन है कि ''आत्मा के स्थान पर मैं व आप एक हैं। और जब मेरी सुरत खत्म हो जाती है, मेरा मन रहता ही नहीं है, मैं व आप एक हो जाते हैं, तब मैं अमुख हो जाता हूँ'' ईश्वर शब्दों से नहीं पाया जाता, न मनन द्वारा प्राप्त किया जाता है।

इसी तरह धीरे धीरे व्यक्ति को चलना पड़ता है। पहले शरीर की भक्ति होती है फिर मन की भक्ति होती है या साधना होती है। जो लोग इसी को अंतिम चरण समझे हुए हैं, उन्हें गुरु महाराज के आदेशों को अच्छी तरह समझना चाहिये, मनन करना चाहिये और उनको अपना रास्ता और आगे बढ़ाना चाहिये। इसीलिये गुरु की ज़रूरत होती है जो बताता रहे कि जिज्ञासु किधर जा रहा है। नहीं तो हमारा मन हमें गुमराह कर देता है। दुर्भाग्य यह है कि सच्चा गुरु मिलता नहीं है और जो हैं भी, तो उनकी वो अवस्था नहीं है जो एक महान गुरु की होनी चाहिए।

इसलिये पढ़ा लिखा आदमी आधुनिक युग में घबरा जाता है और यह प्रश्न करता है कि यह सृष्टि क्या है ? दुख का ही घर है। क्योंकि वो अभी भी शरीर के स्थान पर है। मन के स्थान पर है। संकल्प विकल्पों में अभी फँसा हुआ है। वो इसीलिये संसार को दुखों का घर समझने लगा है। साधारण ही नहीं अच्छे पढ़े लिखे लोग व्यक्ति भी यह कह देते हैं कि यदि परमात्मा ऐसा है कि जो हमें दुखों में डालता है तो हम ऐसे परमात्मा को मानने को तैयार नहीं हैं। परमात्मा ज़ालिम नहीं हो सकता। क्या माँ

बाप ज़ालिम हो सकते हैं अपने बच्चों के प्रति ? ऐसे प्रश्न करते हैं। परन्तु उनका भी दोष नहीं है। उनकी प्रगति अभी इतनी ही हुई है।

जो व्यक्ति आत्मा के स्थान पर चला गया है, जो दुख सुख से ऊपर उठ गया है वो ऐसे प्रश्न नहीं कर सकता। और न गुरुजन सही उत्तर दे पाते हैं। इसका उतर दें भी कैसे ? जहाँ सुख दुख खत्म होता है वहाँ आत्मा है। वहाँ शब्द नहीं है। वहाँ तो मौन भाषा है। मौन भाषा के लिये लोग तैयार नहीं हैं। वो चाहते हैं कि शब्दों में हमें समझाया जाय। तो हम व आप सब मन की क्रीड़ा कर रहे हैं। आत्मा की अनुभूति करने के लिये या समझाने के लिये आत्मा से सम्बन्ध स्थापित करना होता है।

पहली सीढ़ी तो मन की भक्ति है, उससे निवृत्त होने का प्रयास करना चाहिए। क्योंकि बिना भक्ति के या हाथ पाँव की सेवा किये बिना दीनता नहीं आती। जब तक दीनता नहीं आती,तब तक जिज्ञासु अधिकारी नहीं होगा, दूसरी क्लास जाने में, और दीनता बड़ी मुश्किल से आती है। प्रत्येक व्यक्ति के संस्कार को चोट लगती है। कोई बुरी बात कही, तब भी चोट लगती है और यदि कोई भली बात कहो, तब भी, क्योंकि वो मन के स्थान पर हैं। सच्ची दीनता तो तभी आती है कि जो कुछ परमात्मा कर रहें हैं उसी में हम राज़ी–ब–रज़ा रहें। 'जेहि विधि राखे राम, तेही विधि रहिये।' यह सच्ची दीनता है।

बिना भक्ति किये कोई स्थिप्रज्ञ नहीं हो सकता। इससे उसका मन शुद्ध होने लगता है व सूक्ष्म हालत पर आने लगता है। वो स्थूल से निकल कर यानी शरीर व मन से निकल कर बुद्धि के स्थान पर सूक्ष्म आयाम में प्रवेश करता है। यानी गुरु के हमख़्याल होने लगता है। गुरु जो ख़्याल करते हैं, शिष्य उसे ग्रहण करने लगता है। यह मन का प्रेम है। यह अच्छी अवस्था है। परन्तु यह भी अंतिम अवस्था नहीं है।

गुरु महाराज एक दृष्टांत देकर समझाते रहे हैं। पूज्य गुरुदेव अपने गुरुदेव के साथ रेल में यात्रा कर रहे थे, तो गुरु महाराज सामान उठा कर कभी इधर तो कभी दूसरी जगह पर रखते। गुरु महाराज को समझ

में नहीं आ रहा था कि वे क्या कर रहे हैं। तो उनके गुरुदेव पूज्य लाला जी महाराज कहने लगे ''नन्हें, घबराओ नहीं, यह मैं ही कह रहा हूँ, मैं ही आदेश दे रहा हूँ व तुम क़बूल कर रहे हो। मेरी आज्ञा का पालन कर रहे हो, बहुत ही अच्छा है।'' बड़े प्रसन्न हुये। इसी घटना को लेकर पूज्य गुरु महाराज हमें चेतावनी दे रहे हैं कि यह स्थिति मन की है। एक की इच्छा को दूसरा स्वीकार करता है।

यह मन की दशा ही है। स्थूल से सूक्ष्म तो है, अच्छी है, परन्तु यह अंतिम स्थिति नहीं है। गुरु महाराज स्वयं कह रहे हैं, कि ये सूक्ष्म मन की भक्ति है यानी शरीर दो हैं, मन एक हो गया है। परन्तु अब भी मन क़ायम है। स्थूल से सूक्ष्म पर तो आया है परन्तु अंतिम चरण में अभी प्रवेश नहीं किया है उसने। जो इस रास्ते पर चल रहे हैं, सच्चे जिज्ञासु हैं, जो आत्मा के गुणों को समझते हैं, वो इन बातों को अच्छी तरह समझ सकते हैं अन्यथा आमतौर पर लोग पहले चरण में ही, अर्थात् मन की भक्ति में ही फंस जाते हैं। वैसे ज्ञान भक्ति भी होती है,आत्म भक्ति भी। शुरू की जो भक्ति होती है वो शरीर व मन की है। निन्यान्वे प्रतिशत लोग यहीं अटक जाते हैं।

यह मन का प्रेम जब बढ़ने लगता है तब गुरु और शिष्य एक प्राण और दो शरीर हो जाते हैं। शरीर तो अलग दिखाई देता है मगर अन्दर से वे एक होते हैं। यहाँ शिष्य की बुद्धि गुरु में लय हो जाती है। अभ्यासी मन से उठ कर बुद्धि पर आ जाता है, यानी शुद्ध बुद्धि – आत्मिक बुद्धि के स्थान पर, जो आत्मा से प्रेरणा लेती है। गुरु और शिष्य दो शरीर होते हुये भी उनकी भावनायें, उनके विचार, उनके व्यवहार एक जैसे हो जाते हैं। अन्तर नहीं रहता, यहाँ तक कि शिष्य की बाहरी शक्ल भी गुरु की तरह ही हो जाती है। ये शुद्ध बुद्धि, आत्मिक बुद्धि जो है वो आत्मा से या गुरु से प्रेरणा लेती है और वैसी ही बनती चली जाती है।

''तू तू करता तू भया, मुझ में रही न हूँ।''

वो व्यक्ति अपना अहंकार छोड़ कर गुरु के गुणों को अपना लेता है। एक जैसे हो जाते हैं। मगर अब भी मंज़िल हमसे दूर है। भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को समझा रहे हैं, गीता के दूसरे अध्याय में, सांख्य बोलते हुये। अन्त में अर्जुन पूछता है कि ऐसा व्यक्ति व्यवहार कैसे करता है तो भगवान समझाते हैं कि वो दुख सुख से विक्षिप्त नहीं होता। वो द्वन्दों में नहीं रहता है, दुख सुख उसको नही भाते हैं और वह सदा एक जैसी स्थिति में रहता है।

यह अवस्था शुद्ध बुद्धि के स्थान पर ही आती है। साधारण बुद्धि तो तर्क करती है किन्तु यह शुद्ध बुद्धि तर्क नहीं करती। तर्क से विमुक्त होती है। आत्मा के समीप पहुँचने लगती है। जैसे किसी पहाड़ पर जायें, मसूरी जायें, देहरादून पहुँचे तो कुछ थोड़ी थोड़ी ठंडक महसूस होने लगती है, इसी तरह परमात्मा के आयाम में पहुँचने से पहले वे ही गुण जो परमात्मा के हैं, वो सच्चे जिज्ञासु के भीतर में अंकित हो जाते हैं। ऐसा मालूम होता है कि वह भी पूर्ण पुरुष है, परन्तु रास्ता अभी भी दूर है। अभी शुद्ध बुद्धि का आयाम है।

इसके बाद शिष्य का 'कारण' रूप यानी प्रभु से प्रेम होने लगता है। अब वो गुरु के शरीर से प्रेम नहीं करता। लोग कहते हैं कि साधना करते हुए पहले तो गुरु की तस्वीर आती थी, पर अब ध्यान में नहीं आता। वो अच्छा है कि गुरु के शरीर का ध्यान नहीं आता, गुरु का केवल ख़्याल ही आता है। आगे चलकर यह भी खत्म हो जाता है। न अपना ख़्याल रहता है न गुरु का ही। आत्मा, जैसे दिया जलता है, प्रकाश दे रही है। उसमें अपनत्व (स्वत्व) ख़त्म हो रहा है। अपनत्व जल रहा है, प्रकाश दे रहा है। और यह अप्रयास ही हो रहा है। यह स्थिति अच्छी है। ऐसा नहीं है कि जब हमारे ध्यान में तस्वीर नहीं आती, तो हम चिंता करने लगते हैं कि हमारी साधना ठीक नहीं बन रही। साधना में क्रमशः सब कुछ छूटता चला जाता है, – स्थूल, सूक्ष्म, कारण, सब छूटते जाते हैं। शरीर छूट जाता है,

मन छूट जाता है, गुण छूट जाते हैं तो रह जाता है केवल शब्द। शब्द का वर्णन करना सरल नहीं है। शब्द खुलने पर सब का परित्याग हो जाता है, मोह खत्म हो जाता है। न अपने शरीर में आसक्ति रहती है। जब तक अपने शरीर के साथ आसक्ति विद्यमान रहती है, तब तक दूसरे के शरीर के साथ भी मोह होता है। जब तक भीतर में इच्छायें और आशायें हैं तभी तक हम चाहते हैं कि हमारा मकान भी बन जाये, हमारे पास पैसा भी हो। हमारे पास लोग आयें, वो हमारी स्तुति करें। उनसे हम कुछ न कुछ आशा रखते हैं। ये भी खत्म हो जाते हैं। केवल एक आत्मा की अनुभूति रहती है। आनन्द ही आनन्द – शांति, प्रेम। प्रेम मुँहबोला प्रेम नहीं है, सांसारिक प्रेम नहीं है। यह आत्मा का प्रेम है जहाँ अतीत की स्मृति नहीं रहती है। हमें जो लोगों ने दुख पहुँचाया हुआ होता है, हमारे अहंकार को चोट लगी हुई होती है, वो सब खत्म हो जाती है। प्रेम में निर्मलता है, पवित्रता है। वो तो मानो गंगनीर है, भगवान शिव के सिर से गंगा निकल रही है, उसकी जैसी पवित्रता है, निर्मलता है। उसमें कोई संस्कार नहीं – न राग है, न द्वेष है, न अहंकार है।

दीनता से ही बहती है प्रेम की सच्ची गंगा। सच्चे प्रेम में ही सच्ची दीनता है क्योंकि वो अपने को परमात्मा से पृथक नहीं समझती है। यह अंधकार ही है जो अपने आप को अलहदा समझता है। रावण वृत्ति अपनाता है और कहता है मैं ही सब कुछ करता हूँ। रावण समस्त शास्त्र पढ़ा हुआ था, ज्ञान भी था, बहुत विद्वान भी था। किन्तु अहंकार ने ही दीनता को खत्म कर दिया। जब तक आत्मिक प्रेम उत्पन्न नहीं होता तब तक सच्ची दीनता नहीं आती। ‘‘मै कुछ नहीं हूँ’’ – यह बात तब तक कह ही नहीं सकता। आप स्वनिरक्षण कर के देखिये कि हम सब ‘मैं–मैं’ का ही राग गाते रहते हैं। वो गाता है – ‘‘तू ही तू है... तू ही तू है... जो कुछ है सब तुझ से ही हो रहा है’’ ऐसा साधक उसी ईश्वर को अपना मानता है।

ये दशा शब्दों से वर्णन करनी बड़ी ही कठिन है, यहाँ वाणी मौन हो जाती है। साधक बोलता नहीं है। जो कुछ होता है, जैसा उससे प्रभु कराते

हैं, वह वैसा ही करता है। वो बोलता नहीं है, उसका मौन बोलता है। सूरज बोलता नहीं है, उसका प्रकाश बोलता है। उसकी किरणें बोलते हैं। परमात्मा बोलता नहीं है, उसका प्रेम बोलता है। महर्षि रमण से लोगों ने कहा कि आप मंच पर आकर प्रवचन दिया करें ताकि लोगों का कुछ उद्ध ार हो जाये। महर्षि रमण उत्तर देते हैं – वैसे तो वो बहुत संक्षिप्त उत्तर देते थे। पहले तो बोलते नहीं थे। यदि किसी ने प्रश्न किया तो वे एक ही बात कहते थे कि ''भाई अपने आप से पूछो कि यह प्रश्न किसने किया और वह कौन है।'' किसने प्रश्न किया – जब जिज्ञासु से यह प्रश्न किया गया तो वह कहता है कि यह प्रश्न मैंने किया। फिर पूछते हैं कि ***'मैं कौन हूँ' यह पूछते जाते और उत्तर पाते – क्या मैं शरीर हूँ – नहीं, प्राण मैं हूँ – नहीं, बुद्धि हूँ – नहीं, आनंद हूँ – नहीं'***। यहाँ जा कर अहंकार खत्म हो जाता है, आत्मा में लय हो जाता है। क्या हूँ, चुप हो जाता है। तब जवाब चुप में मिलता है, मौन में मिलता है।

शब्दों से परमात्मा की जानकारी नहीं हो सकती, उसका ज्ञान नहीं हो सकता। जब महर्षि रमण से कहा गया कि आप मंच पर आकर प्रवचन दिया करें तो वे फरमाते थे कि मौन की भाषा, शब्दों की भाषा से बीसियों गुणा (यानी twenty times) अधिक शक्तिशाली है। आत्मा की प्रसादी भी मौन में ही संत प्रदान करते हैं। बोल कर प्रदान नहीं करते। गुरु–शिष्य का प्रेम मौन में होता है, शब्दों में नहीं होता। शिष्य बैठ जाता है आकर, कुछ नहीं करता। गुरु बैठा है, वह भी कुछ नहीं करता। धीरे धीरे दोनों आत्मायें एक हो जाती हैं। कहते हैं लोगों को कि भाई शांत बैठा करो, मगर जब तक वह वृत्ति बनती नहीं है, व्यक्ति बैठता नहीं है। उसको आनंद आता है, शब्दों को सुनकर। शब्दों में, भजनों में, पुनः उन्हीं से प्रभावित हो जाता है व वहीं फंस जाता है। शब्दों से आगे जाने का प्रयास ही नहीं करता।

पुराने अभ्यासी अच्छी तरह समझते हैं कि हमारे यहाँ मौन की साध ाना है। शुरू–शुरू में गुरु महाराज नहीं बोला करते थे। शरीर छोड़ने से

कोई दस बारह साल पहले उन्होंने बोलना शुरू किया और उसी प्रथा में हम भी बोल रहे हैं, परन्तु हमारा साधन मौन का है। जितना प्रेम का आदान प्रदान मौन में होता है वो बोल कर नहीं होता है। आत्मा में शब्द नहीं है। प्रेम में शब्द नहीं है। आनंद मौन में ही आता है। शब्दों से जो आनंद आता है वो इन्द्रियों का रस है। इससे हमें ऊपर उठना है। इसलिये गुरुदेव चेतावनी दे रहे हैं। ये शब्द बड़े गहरे हैं। हमें भी इनकी गहराई में जाना चाहिए, मनन करना चाहिए। गुरुदेव क्या कह रहे हैं, शरीर से ऊपर उठें, मन से ऊपर उठें, तर्क वाली बुद्धि से ऊपर उठें फिर शुद्ध बुद्धि (यानी आत्मा से जो प्रेरणा लेती है) उससे भी आगे चलें।

तर्के दुनियां, तर्के उक़बा, तर्के मौला, तर्के तर्क।

संसार के विचारों को भी छोड़ें, ये भी फंसाते हैं। इससे ऊपर जो विचार हैं वो परलोक के सद्‌विचार होते हैं। अन्ततः उनका भी परित्याग करना है। फिर जो विचार ईश्वर की तरफ जाने की प्रेरणा देते हैं, उन विचारों को भी छोड़ना है। और विचार करने के विचार को भी छोड़ना है। तर्के तर्क (तर्क को भी छोड़ना है) उस समय जो स्थिति होगी वह आत्मिक मौन होगा। गुरुदेव के अनुसार ''यही प्रेम की पराकाष्ठा है। वह सब चीज़ों में, चाहे जानदार हों या बेजान, अपनी ही आत्मा देखता है।''

जिस साधक के भीतर में प्रेम की ज्योति प्रकाशित हो गयी है और स्थिरता आ गई है, उस प्रकाश में वह अपने को भी परमात्मा का ही एक अंग समझता है। गुरु में भी परमात्मा के ही दर्शन करता है और अपने विरोधियों में भी परमात्मा के ही दर्शन करता है। उसके लिये कोई शत्रु नहीं, कोई मित्र नहीं है – सब परमात्मा ही परमात्मा है।

''एक ही एक, एक ही एक। तू ही तू है, तू ही तू है, तू ही तू है''

यह भी वर्णन करने के लिये शब्द हैं। एकता में द्वैत है ही नहीं। इसलिये प्रत्येक व्यक्ति चाहता है कि वो साधना में बैठे तो उसको विचार न आयें, संकल्प–विकल्प न उठें। वो मौन के आयाम में प्रवेश चाहता है

परन्तु संस्कारवश इस दुनियाँ से वो निकल नहीं पाता है।

प्रेम की अनुभूति परमात्मा कृपा करे सब को हो। परन्तु इसके लिये यज्ञ करना पड़ता है, उस यज्ञ में आहुति देनी पड़ती है। आहुति – काम, क्रोध, लोभ, मोह – इन सब की आहुति देनी पड़ती है। अंतिम आहुति अहंकार की है। अपनत्व की है, मैं व मेरेपन की है। अपने आप को पूर्णतः मिटा देना है, रज बनना है, ख़ाक बनना है। ये ख़ाक भी केवल एक संकेत है। आत्मा की स्थिति वर्णन करना कठिन है। व्यक्ति जब गंगा में डुबकी लगाता है तो गहराई में जाता जाता अपना अस्तित्व खो बैठता है। वो किस क्षण हुआ पता ही नहीं लगता है। घटना घटित होती है प्रेम की। इसमें कोई पुरूषार्थ नहीं रहता है, कोई अवरोध नहीं रहता है, कोई विचार भी नहीं, जहाँ विचार नहीं है वहाँ आशाऐं, इच्छाऐं आदि सब मिट जाती हैं।

एक स्थिति इसके बाद और आती है। जिस पर कृपा हो और जिससे ईश्वर को काम लेना होता है (यानी सन्तों से) उन्हें संसार का उद्धार करने हेतु नियुक्त किया जाता है। वे आत्मस्थित भी रहते हैं तथा शरीर व मन से हमारा उद्धार करने का प्रयास भी करते हैं। सूफ़ी लोग इसको ''बक़ा'' कहते हैं। लय अवस्था को ''फ़ना'' कहते हैं और हमारी भाषा में इसको पुनर्जन्म कहते हैं। 'बक़ा' की स्थिति केवल संतों को ही प्राप्त होती है।

पहले तो लोग वहाँ तक पहुँचते ही नहीं, कुछ लोग पहुँच भी जायें तो उनका शरीर अधिक समय के लिये रहता नहीं है। स्वामी विवेकानन्द बत्तीस साल की उम्र में ही चले गये। स्वामी रामतीर्थ जी तीस साल के करीब के थे जब उनका शरीर छूट गया। वो अपने प्रेम को, आत्मिक प्रेम को, अपने वश में नहीं रख पाये। गुरु गोविंद सिंह जी की आयु केवल बयालीस साल थी। शंकराचार्य जी की आयु भी तीस–बतीस वर्ष की थी। शरीर रहता ही नहीं है। इन महान शक्तियों को, ईश्वर की जिस पर विशेष कृपा होती है वही झेल सकता है।

योगियों की आयु सैंकड़ों बरस होती है, परन्तु योगियों में मन रहता है, इसलिये उनका शरीर दीर्घआयु हो जाता है। जहाँ मन मिट जाता है वहाँ शरीर का रहना असंभव नहीं तो कठिन है। उन्हीं लोगों का शरीर रह पाता है जिन पर ईश्वर की कृपा हो व ईश्वर चाहता है कि वो संसार का उद्धार करने के लिये यहाँ रहें। नहीं तो शरीर तो छूट ही जाता है। आप देखेंगे कि प्रायः स्त्रियाँ नहीं चाहती कि पुरूष ज़्यादा सत्संग में जायें। क्योंकि यदि पुरूष की प्रवृति तीव्र होती है तो वह आत्मस्थित हो जाता है और उसके शरीर के छूटने की संभावना बढ़ जाती है। स्त्री प्रकृति से डरती है, वो चाहती है कि वो सुहागवती बनी रहे। अपने सुहाग के लिये वो पुरूष को भी आगे नहीं बढ़ने देती है।

यही काम माया का भी है। माया बाधा डालती है। परमात्मा में लय होना या आत्मरूप होना कोई साधारण बात नहीं है। माया बड़ी परीक्षा लेती है। कोई शेर का पुत्र ही सफल होता है। अन्यथा कोई पहले चरण पर ही गिर जाता है, कोई दूसरे पर या कोई तीसरे पर। कोई कोई विरला व्यक्ति ही चौथे पद तक जाता है और वहाँ से भी कोई–कोई ही सफल हो कर निकलता है।

सत्संगी भाईयों से निवेदन है कि वे गुरु महाराज के प्रवचनों पर बड़ी गंभीरता से ध्यान करें, मनन करें और दूसरे भाई बहनों से भी प्रार्थना है कि वह भी समझें। परमात्मा की ओर बढ़ने का जो रास्ता है, साधना है, वह सरल तो है ही, परन्तु मन में यह संतुष्टि कभी न आये कि हम पूर्ण हो गये – जैसा कि यह मन अहंकारवश कभी–कभी कह देता है। कोई कहता है मुझे तीस बरस हो गये, कोई कहता है मुझे पचास बरस हो गये। यहाँ तो सैकड़ों साल चलते चलें, कितने ही जन्म चलते चलें, तो भी पूर्णता पर पहुँचना कठिन है पर सदा अपने लक्ष्य को हम अपने सम्मुख रखें।

इस रास्ते पर थकावट नहीं आनी चाहिए। गुरु महाराज कहा करते थे कि संसार से तो थकावट आनी चाहिए, थक जाना चाहिए परन्तु

परमात्मा के रास्ते पर, साधना के रास्ते पर कभी भी संतुष्टि या थकावट नहीं आनी चाहिए। चलते चलो और आगे क्या है? और आगे क्या है? और आगे और आगे। अन्ततः साक्षात् प्रेम स्वरूप बनना है। ईश्वरीय गुण अपनाने है। परन्तु मन और माया के आवरणों ने आत्मा को जो ढक रखा है, उनसे मुक्त होना है। हमारा तो सच्चा स्वरूप ही यही है ''अहं ब्रह्मस्मि''। मैं तो ब्रह्म हूँ, मै ही आत्मा हूँ। और फिर यह 'मैं' भी खत्म हो जाये, 'हूँ' भी खत्म हो जाये। केवल आत्मा व परमात्मा रहें। यह है आत्म-साक्षात्कार।

गुरुदेव सबका कल्याण करें।

आलस्य ही मनुष्याणा शरीरस्थ महान रिपुः।
नास्स्त्युद्यमसमो बन्धुः कृत्वा य नावसीदति।।

अर्थ-ः आलस ही मनुष्य शरीर में रहने वाला सबसे बड़ा शत्रु है, उद्यम के समान मानव का कोई बन्धु नहीं है जिसके करने से मानव दुखी नहीं होगा।

❑❑❑❑

प्राचीन मुस्लिम संतों के जीवन चरित्र

हातिम हासम

तपस्वी हातिम हासम सत्यनिष्ठ, प्रेमी, सहनशील, और वैरागी थे। उनके जीवन का अधिकांश समय खुरासन में बीता था। ध्यान और शास्त्र उनके श्वासोच्छ्वासों में गुँथे हुऐ थे। सत्य और प्रेम का उल्लंघन करके उन्होंने एक भी पग आगे नहीं बढ़ाया। महर्षि जवनिद कहते हैं ''हातिम हासिम सरीखा महात्मा इस दुनिया में दुर्लभ हैं'' उनके लिखे अनेक उत्तम ग्रन्थ उपलब्ध हैं। बोल चाल में तो वे बहुत ही कुशल थे।

एक दिन उन्होंने अपने सत्संगियों से पूछा कि 'यदि किसी के प्रश्न करने पर तुम कहो कि हम हातिम से विद्या अथवा तत्वज्ञान प्राप्त किया है तो उसके यह कहने पर कि हातिम तो अनपढ़ और अज्ञानी है, तुम क्या उत्तर दोगे?' उनके निरुत्तर रहने पर उन्होंने यही कहा ''तुम यही बताना कि हमने तो दो बातें सीख हैं, एक तो जो मिल जाये उसी में संतोष मानना और यह याद रखना – पराई आशा से भली निराशा है।''

एक दिन उन्होंने अपने साथियों से कहा– ''अब मैं कब तक तुम लोगों को उपदेश देने का भार उठा सकूँगा? किसी योग्य पुरूष को चुन लो तो ठीक।'' साथियों ने एक ऐसे आदमी का नाम बताया जो अनेक बार धर्म युद्ध कर चुका था। उसका नाम सुनकर हातिम बोले –'ना वे तो ग़ाज़ी हैं। इस धर्म संस्था के लिये उपयोगी नहीं होंगे।' साथियों ने एक ऐसे आदमी का नाम बताया जो दानवीर था। हातिम ने उसका नाम भी यह कह कर टाल दिया कि वह केवल दाता ही है। इस पर साथियों ने एक ऐसे आदमी का नाम लिया जो बहुत बार हज हो कर आया था। हातिम बोले ''भाई वे तो हाजी ही हैं। मुझे तो ऐसा आदमी चाहिए जो सब प्रकार से उपयोगी हो।'' साथियों ने तब पूछा ''तब आप ही बतावें

कि किन–किन गुणों वाला मनुष्य उपयोगी होगा? हातिम बोले जो सदा सर्वदा ईश्वर का भय रखता हो और सिवा प्रभु के किसी की आशा न रखता हो।''

एक बार एक धनवान ने हातिम को अपने धन का बहुत सा हिस्सा देने की इच्छा प्रदर्शित की। हातिम ने कहा – ''ना ना! मुझे इस संकट में मत डालो, कारण, तुम्हारी मृत्यु के बाद मुझे यह कहना पड़ेगा'' – ''स्वर्गीय जीवन देने वाले मेरे हे प्रभु! आज मेरे सांसारिक दाता की मृत्यु हुई है।''

एक बार एक नास्तिक से उनका इस प्रकार वार्तालाप हुआः–

नास्तिक – तुम्हें रोज़ आहार कहाँ से मिलता है?

महात्मा – प्रभु के अक्षय भंडार से।

नास्तिक – खाते हो लोगों का और नाम लेते हो ईश्वर का।

महात्मा – मैंने तुमसे कभी कुछ लिया है?

नास्तिक – मेरे पास से तो नहीं लिया है, पर क्या तुम्हारा आहार स्वर्ग से आता है?

महात्मा – एक मेरा ही क्यों, सभी प्राणियों का आहार स्वर्ग से आता है।

नास्तिक – तो दरवाज़ा बंद करके पड़े रहो, देखते हैं आहार कहाँ से आता है।

महात्मा – बहुत ठीक। मैं बालक था तब दो वर्ष तक पड़ा ही रहता था तो भी आहार तो मेरे मुँह में पहुँच ही जाता था।

नास्तिक – क्या कभी ऐसा आदमी भी देखा है जो बिना बोए काट सके?

महात्मा – हाँ बहुत से। एक तुम्हीं को देख रहा हूँ। बता तुमने कब बोऐ थे जो ये केश तेरे मस्तिष्क पर उगते और कटते रहते हैं।

नास्तिक – ठीक मान लो तुम आकाश में हो, तो वहाँ आहार कैसे आवेगा?

महात्मा – एक पक्षी की भाँति।

नास्तिक – और जो धरती में गढ़े हो तो ?

महात्मा – एक चींटी की भाँति।

ये सब उत्तर सुन कर वह नास्तिक स्तब्ध हो गया। उसकी आँखों से पश्चात्ताप के आँसू निकलने लगे। दीन भाव से उसने जब उपदेश के लिये प्रार्थना की तो वे बोले – ''भाई लागों की आशा छोड़, ऐसा करने से लोग भी तेरी आशा छोड़ देंगे। जो साधना करो, गुप्त रुप से प्रभु के निमित्त करो। ईश्वर अपने आप जगत की भलाई के लिये तेरे गौरव का प्रसार करेगा। तू दुनिया की सेवा करेगा तो दुनिया भी तेरी सेवा करेगी।''

महर्षि हातिम कहा करते थे – रोज़ सवेरे शैतान मुझसे प्रश्न करता है – आज तू क्या खायेगा ? मैं जवाब देता – मुर्दा खाऊँगा। वह पूछता क्या पहनेगा ? मैं कहता – मुर्दे का कपड़ा। वह आगे पूछता – रहेगा कहाँ ? मैं बताता – कब्र में। मेरे ये उत्तर सुनकर शैतान मुझे बड़ा अभागा बता कर चल देता।

एक दिन महात्मा हातिम चार मास के लिये परदेस जाने को उधत्त हुए। उन्होंने अपनी पत्नी से पूछा ''तेरे लिये खाने पीने का कितना सामान जुटा जाऊँ ?'' स्त्री बोली – ''मेरी आयु हो इतने तक के लिये।''

महात्मा– ''तेरी आयु जानना तो मेरे वश में नहीं है।'' स्त्री बोली – ''तो फिर मेरी आजीविका भी आपके वश में नहीं है। स्त्री का प्रभु पर इतना भरोसा देख कर महात्मा प्रसन्नचित्त से परदेस चले गये। उनके चले जाने पर एक वृद्धा स्त्री ने महात्मा की स्त्री से पूछा, बहन हातिम तेरी क्या व्यवस्था कर गये हैं ? उसने उत्तर दिया – ''बुढ़िया माँ, मेरे स्वामी तो खाने वाले थे, खाना देने वाला तो अब भी उसी प्रकार यहीं है।''

तपस्वी हातिम जब परदेस जा रहे थे, तो एक आदमी उनसे उपदेश लेने आया। उससे उन्होंने कहा – ''मुझे बंधु मित्र चाहिए तो उसके लिये ईश्वर बस है, संगी चाहिए तो उसके लिये विधाता बस है, मान प्रतिष्ठा चाहिए तो संसार बस है, सांत्वना देने वाला चाहिए तो कुरानशरीफ बस

है और यदि मेरा यह कथन तेरे गले नहीं उतरता हो तो फिर तेरे लिये नरक बस है।''

एक दिन उन्होंने हामिद लिफाफ नामक मनुष्य से पूछा ''कैसे हो ?'' वह बोला ''कुशल और शांतिपूर्वक।'' महात्मा बोले कुशल से तो वह है जो संसार के पार उतर गया और शांतिपूर्वक वह है जिसने स्वर्गीय जीवन का आनंद पाया।

कुछ लागों ने उनसे पूछा आपकी क्या अभिलाषा है ? उन्होंने उत्तर दिया – ''मेरी अभिलाषा है दिन रात सुख में रहना। जिस दिन मैं ईश्वर का कोई अपराध नहीं करता वही दिन मेरे लिये सुख का दिन है।''

एक दिन किसी ने हातिम को बताया कि अमुक व्यक्ति के पास अपार धन है। महात्मा ने पूछा ''धन के साथ उसने आयु भी कमाई है क्या ? आयु नहीं कमाई तो मरने पर वह धन उसके क्या काम आवेगा ?

किसी ने उनसे कहा – ''आपको कुछ चाहिए तो मुझे आज्ञा दें।'' महात्मा बोले – ''हाँ मेरी एक ही माँग है – न आप मेरे पास आवें और न मैं आपके पास आऊँ।''

एक साधु के यह पूछने पर कि आप नमाज़ किस प्रकार पढ़ते है ? उन्होंने बताया – ''नमाज़ का समय होने से पहले तो मैं वजू करता हूँ, बाह्य वजू जल से और आंतरिक वजू पश्चात्ताप से। फिर मसजिद में जा कर काबा के दर्शन करता हूँ, महात्मा इब्राहिम का स्थान अपनी भोंहों के बीच में देखता हूँ। स्वर्गलोक को अपने दाहिने, नर्क लोक को बाएँ, संसार से पार उतरने के पुल को पावों के तले और मुत्यु को पीठ पीछे समझकर मैं अपना हृदय ईश्वर को अर्पित करता हूँ। पीछे सम्मान पूवर्क खड़ा होता हूँ। प्रभु के भय से मंत्र जाप करता हूँ। विनयपूर्वक झुक कर दीनता भरे वचन बोलता हूँ और धरती पर माथा टेक लेता हूँ। फिर गम्भीरता पूर्वक बैठ कर कृतज्ञता से सलाम करता हूँ। इस प्रकार मेरी नमाज़ पूरी होती है।''

एक बार कुछ पण्डितों के साथ बातचीत होते समय महात्मा ने कहा कि यदि ये तीन अवस्थायें तुम्हारी न हों तो, नरक अवश्यम्भावी है। 1. पहली, जो दिन बीते जा रहे हैं, उनके लिये खेद 2. दूसरी, आज का दिन सर्वश्रेष्ठ गिनकर अपनी आत्मा के कल्याणार्थ यथा शक्ति कार्य करना और शत्रुओं को भी सन्तुष्ट करना। 3. तीसरी, कल ही तुम्हारी मृत्यु हाने वाली है इसे सदा याद रखना।

महात्मा हातिम के बगदाद आने पर वहाँ के खलीफा ने उन्हें सम्मान पूर्वक बुला भेजा।

उन्होंने आते ही कहा – ''वैरागी पुरूष! सलाम।''

खलीफा– मैं कैसा वैरागी ? मेरी आज्ञा में तो सारा संसार है, वैरागी तो आप हैं।

हातिम – नहीं वैरागी तो आप ही हैं।

खलीफा – कैसे ? ?

हातिम – ईश्वर ने कहा है – ''भौतिक सम्पत्ति का कोई मूल्य नहीं है। आपने दैवी सम्पत्ति को छोड़ कर अपनाया है तुच्छ भैतिक सम्पत्ति को! इसलिये सच्चे वैरागी तो आप ही हैं। मैंने तो केवल इस असार संसार की वासनायें ही छोड़ी हैं और सर्वश्रेष्ठ दैवी सम्पत्ति में मैं आसक्त हुआ हूँ। इस प्रकार मैं तो आप सरीखे त्यागी के आगे तुच्छ हूँ।

उपदेश वचन

1. अहंकार और लोभ से सावधान रहना। अहंकारी अपने से तुच्छ माने हुये लोगों का अपमान सहने के बाद ही मरने पाता है। लोभी जब तक दुनियां में भूख प्यास से पीड़ा नहीं पा लेता, तब तक प्रकृति उसे संसार में से नहीं जाने देती।
2. पण्डितों और वैरागियों का अहंकार यदि धनवानों और राजाओं के अहंकार के साथ तोला जाये तो पण्डितों और धनवानों का अहंकार वज़न में अधिक उतरेगा।

3. मुर्दा, रोगी, आलसी, और स्वस्थ चार प्रकार के मन होते हैं। ध ार्मद्रोही का मन मुर्दा, पापी का मन रोगी, लोभी और स्वार्थी का मन आलसी और भजन साधन में तत्पर व्यक्ति का मन स्वस्थ होता है।
4. प्रत्येक काम को करते समय याद रखना कि मैं जो काम कर रहा हूँ, उसे ईश्वर देख रहा है, मैं जो कुछ बोल रहा हूँ, उसे ईश्वर सुन रहा है। मौन धारण करते समय भी उसका कारण ध्यान में रखना क्योंकि ईश्वर तो उसे भी जानता है।
5. .... तीन प्रकार की हैं – भोगने, बोलने और देखने की। भोग भोगते समय ध्यान रखना कि ईश्वर देख रहा है। बोलते समय ध्यान रखना कि सत्य का नाश न हो और देखते समय ध्यान रखना कि साधुता नष्ट न हो जाये।
6. इन चार बातों के बारे में आत्म–परीक्षा करते रहना। पहला, कोई भी शुभ कार्य करते समय तुम निष्कपट हो? दूसरा, जो कुछ बोल रहे हो निःस्वार्थ भाव से हो? तीसरा, जो दान उपकार कर रहे हो बदले की आशा के बिना हो, और चौथा, कि जो धन संचय कर रहे हो वह कृपणता छोड़ कर हो?
7. इस संसार में एक अधार्मिक जो कुछ ग्रहण करता है वह लोभ के लिये ही और जो कुछ वह दान करता है वह भी अधर्म के निमित्त ही होता है।
8. वैराग्य की पहली अवस्था में ईश्वर पर विश्वास उत्पन्न होता है, दूसरी अवस्था में सहनशीलता बढ़ती है और तीसरी अवस्था में ईश्वर के प्रति प्रेम प्रकट होता है।
9. यदि तुम ईश्वर के प्रीतिपात्र होना चाहते हो तो ईश्वर जिस स्थिति में रखना चाहता है उसमें

●●●

प्रश्नोत्तरी

परम पूज्य ऐ. के. बैनर्जी साहब एवं परम पूज्य दादा गुरुदेव का प्रसाद

(गोरखपुरः12–6–1964)

प्रश्नः ***आत्मा जिसको तमाम आवरणों से अलहदा मानते हैं, शुरु शुरु में दुनियां में आ कर क्यों फंसी?***

उत्तरः यह सवाल अज्ञानता के वश पैदा होता है। जब ज्ञान पैदा हो जाता है तो यह सवाल भी शान्त हो जाता है।

परमात्मा के दो रुप हैं और यह स्वाभाविक है, हमेशा से है और रहेंगे। एक व्यक्त और एक अव्यक्त। जैसे प्राणी के दो रुप हैं (1) जागृत और (2) सुषुप्त। अव्यक्त अवस्था में परमात्मा अपने आप में आनंदित रहता है जैसे कि प्राणी सुषुप्त अवस्था में अपने आप में ही में आनंदित रहता है लेकिन व्यक्त अवस्था में वही परमात्मा रुप होकर दुनियां में अपना मग्न रुप देखता है और उसमें मग्न होता है। जैसे कि एक प्राणी जागृत अवस्था में अपना ही अक्स आनन्द रूप में दुनियां की हर चीज़ में देखता है और खुश होता है। देखने वाला वह जीव स्वयं है और जिसको देख रहा है, वह भी स्वयं ही है। अज्ञान के कारण दो दिखाई देते हैं। जब ज्ञान हो जाता है और मालूम हो जाता है कि यहाँ केवल एक ही है और अनेक रूपों में वह आप ही अपना खेल खेल रहा है तो यह भ्रम कि आत्मा शुरू शुरू में दुनियां में कैसे फंसी, जाता रहता है

आत्मा परमात्मा की सब चीज़ों को जो उसने दी हैं, लेना क़बूल

नहीं करता बल्कि कहता है कि यह तुम्हारी ही है, अपने पास ही रखो, मैं तो केवल तुम्हें ही चाहता हूँ। तब परमात्मा स्वयं गुरु रूप धारण करता है और उपदेश देता है कि यह जगत ईश्वर का है, तुम भी ईश्वर के हो और जो तुम काम कर रहे हो यह भी ईश्वर का है और उस ईश्वर के लिये ही इसे कर रहे हो। और जब जीव को इसका ज्ञान हो जाता है तो वह ईश्वर रूप हो जाता है।

परमात्मा नित्य है और उसकी लीला भी नित्य है। वे पूर्ण हैं और अपनी पूर्णता का रसास्वादन करते हैं अपना अपूर्णता के भीतर। वे जो स्वयं आनंद हैं द्वन्द के भीतर भी रसास्वादन करते हैं, इनफ़िनिट (Infinite) और फ़िनीट (Finite) के अन्दर रसास्वादन करते हैं। यही परमात्मा का स्वभाव है। जो वैचित्रय में जन्म लिया है परमात्मा का स्वभाव है, परन्तु जो देश काल में फंस गया, वही जगत की ओर दौड़ने लगा और माया में फंस गया और माया में लिप्त हो गया। इस कारण अपने को पृथक जीव समझने लगा और नीचे गिर गया। ऐसे ही हैं जीव जो ऊपर (उर्ध्व) में चढ़ने की कोशिश करते हैं।

एक है मायातीत की गति और एक है मायाधीन। ऐसी ही लीला चल रही है। जो जीव हैं वह शिवत्व प्राप्त करना चाहते हैं, जो शिव हैं वे सदैव का रसास्वादन करना चाहते हैं क्योंकि शिव तो सदा आनंद का भोग करते हैं। अंश अंशी की ओर बढ़ता है और अंशी अंश की ओर बढ़ता है। जीव जो कहते हैं कि हमें कालदेश का, माया का, संसार का आनंद नहीं चाहिए, आप जिस परमानन्द का स्वादन करते हैं वह हमको दीजिये। जब और जीव ऐसा मांगते हैं तब वही परमात्मा गुरु रूप में आकर उनको ऐसा स्वादन कराते हैं। अन्य जीव माया के ही आनन्द लेते हैं, परमानन्द की जिनको चाह नहीं वे उसी में लिप्त रहते हुऐ जन्मते मरते रहते हैं।

जो योगी (जिसने परमानन्द से अपना योग कर लिया हो) जीव आत्मा होते हैं, वे ही सबको अपने भीतर देखते हैं और अपने को सबमें देखते हैं। दुख तो भीतर का लक्षण है। सुख-दुख, जय-पराजय, लाभ-हानि, ये

सब द्वन्द अपूर्णता के लक्षण हैं। जब हृदय पूर्ण हो जाता है तब यह सब द्वन्द मिट जाते हैं, पूर्णता प्राप्त हो जाती है। रजोगुण और तमोगुण का प्रभाव उन पर नहीं होता। रक्षा लाभ के लिये उनमें कोई चाह नहीं होती, उसके लिये उनकी कोई चेष्टा नहीं होती। जब ऐसा होता है तभी आत्म लाभ है। ऐसा देखने की दृष्टि ही साधन है।

द्वन्द भाव हटा कर सब में एक आत्म–स्वरूप परमात्मा को देखो। यहाँ भी पूर्ण और वहाँ भी पूर्ण। पूर्ण से भी पूर्ण का प्रकाश है। उपनिष्द का एक श्लोक हैः

पूर्णमदः पूणं इदं, पूर्णात पूर्णमुच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय, पूर्णमेवावशिष्यते।।

एक स्वयं पूर्ण परमात्मा ने बहु विश्व की रचना की तो वह भी पूर्ण है। पूर्णता ऐसी कोई चीज़ नहीं जो लाभ करने से होगी। गुरु उपदेश देते हैं कि तुम स्वयं पूर्ण हो और अपने अन्तर में पूर्णता का रसास्वादन करो। किन्तु जब हम बर्हिमुख हो कर एक अपूर्ण से दूसरे अपूर्ण की ओर जाते हैं तब जीव दुख द्वन्द में पड़ता है।

अपने अंतर में परमात्मा और विश्व प्रपंच में भी सर्वभूतेषु परमात्मा का दर्शन देखो। गुरु जी की शिक्षा है – ''अपने अंतर में चिन्तन करो, परमात्मा का जो भी नाम अच्छा लगता है उस पर ध्यान देकर आनन्दमय हो जाओ।'' जब ध्यान गंभीर होता है तब जीवात्मा आनन्दमय हो जाता है।

जो जीव अपूर्णता से परे रहकर इस परमानन्द की चाहना करता है वह इसका अंशी है, किन्तु जो विश्व प्रपंच में तृप्ति चाहता है उसके पास वह प्रकाश नहीं आता।

Econmics (अर्थशास्त्र) में Demand and Supply (मांग और पूर्ति) का नियम होता है, वैसा ही कुछ यहाँ भी समझो। जो संसार चाहते हैं, भगवान उन्हें संसार देते हैं। पर जो संसार नहीं चाहते हैं, कहते हैं, ''संसार तुम्हारा है'' तो उसे भगवान आत्म प्रकाश देते हैं। जब तक संसार और

उसकी वस्तुओ में आसक्ति है तब तक आत्मा के ऊपर आवरण हैं, पर जब यह आसक्ति नहीं रहेगी तब यह संसार तो ऐसा ही रहेगा जैसा है, केवल आसक्ति छूट जायेगी।

यह जो देखते हैं सब परमात्मा का लीला रुप है। इसका न आदि है न अन्त। किन्तु व्यक्त और अव्यक्त अवस्था है। जैसा जीव का होता है, जागृत और सुषुप्ति, वैसे ही परमात्मा का भी है कभी संहार, कभी सृष्टि।

हम Ego यानी, मैं–पने से अपने को स्वाधीन मानते हैं। आत्म ज्ञान से ऐसा मानते हैं। Ego ही भगवान की मुख्य लीला का साथी है। यदि मनुष्य सृष्टि न हुई होती तो यह लीला न होती। अन्य प्राणी और जड़ पदार्थों की लीला न होती। मनुष्य को ही भगवान ने शक्ति दी है कि भगवान के प्रति विद्रोह करे। जब वह भगवान के प्रति विद्रोह करते हैं तब असुर हैं और जब वह संसार लाभ करके परमात्मा का चिंतन करते हैं तब देवता हैं। परन्तु जो इनसे भी ऊपर उठकर जड़ चेतन से अलग हो कर परमात्मा की प्राप्ति करते हैं, वे ही सच्चे योगी हैं। वे सुख दुख द्वन्द निर्द्वन्द के बन्धन से मुक्त हो जाते हैं।

हिन्दू शास्त्र में एक विचित्र बात है। नारी को शक्ति और पुरूष को शिव माना है। शक्ति से ही सब सृष्टि की रचना है और शिव हैं 'शील'। परन्तु यदि शक्ति का शिव से मिलन न हो तो फिर वह तो अमंगलमय है। इसलिये नारी को जननी या शिवानी करके माने तब वह मंगलकारी, कल्याणकारी होता है। किन्तु जब उसे भोग करना चाहता है नारी मान कर, तब वह संहारकारिणी बन जाती है। दैवी शक्ति तब होती है जब उसे जननी करके मानें। महायोगी के लिये महामाया से उत्तीर्ण होना बड़ा मुश्किल है। जब योगी के अन्दर नारी के लिये कामिनी भाव है तब वहाँ पूर्णता नहीं है। किन्तु जब शिशु बनकर नारी को मातृ–भाव करके माने तब ही जय मिलेगी। अपनी स्त्री को भी जब वह मातृ–भावना से माने तभी योगी सच्चा योगी होगा। संसार छोड़ कर योगी बनना तो आसान

है परन्तु संसार में रह कर निर्विकार हो जाये कि नारी के प्रति मातृ–भाव रखे। नारी तो मोहिनी मूर्ति है, मातृ–मूर्ति में बदलना होगा। योगी को हर चक्र में मातृ–भावना का अनुभव करना चाहिए। अपनी शक्ति तो कुछ नहीं है, सब में शिव शक्ति को देखो। समझो, मैं तो शिशु हूँ, कुछ नहीं कर सकता। मैं असहाय हूँ, सब माँ करने वाली है। ऐसा सोचने से अहंकार अशक्त हो जाता है। Ego को जय करने के लिये शिशु बन जाना ज़रूरी है।

गुरु गोरखनाथ व उनकी परम्परा में गुरु छेन्द्रनाथ व गुरु चौरंगी नाथ महायोगी थे। एक बार महामाया शक्ति ने उनकी परीक्षा लेनी चाही। माता ने शिव जी से कहा कि आप तो गृहस्थ हैं और ये योगी आपको कैसे प्राप्त करना चाहते हैं, कुछ आश्चर्य की बात है। शिव भगवान शील और शान्ति के भंडार जो हैं, मुस्करा दिये और पूछा कि क्या चाहती हो ? माता ने कहा कि मैं यह देखना चाहती हूँ कि यह योगी पूर्ण हैं अथवा नहीं। शिवजी ने अपनी अनुमति दे दी। माता ने तीनों योगियों को अपने यहाँ प्रसाद पाने के लिये आमंत्रित किया। शिव जी के यहाँ का प्रसाद, भला कौन ऐसा होगा जो उसे पा कर अपने को न सराहे। अतः तीनों योगी पधारे। माता ने बड़े ही स्वादिष्ट पकवान बनाये थे। स्वयं उन्होंने एक अनुपम मोहिनी का रूप धारण किया और तीनों को भोजन परोसने लगीं। योगियों के मन के भाव उथल पुथल होने लगे। मछेन्द्र नाथ ने सोचा कि 'यदि ऐसी स्त्री भोगने को हो तो हम योग छोड़ दें।' माता सब के मन की बात जानने वाली हैं, उन्होंने मन ही मन आशीर्वाद दिया – 'तथास्तु'। चौरंगी नाथ ने सोचा 'यदि ऐसी मोहिनी भोगने को मिले तो चाहे हाथ पैर भी कट जायें मुझे दुख न होगा। माता ने उनके मन की बात भी जान ली और कहा 'तथास्तु'। जब गोरखनाथ के पास भोजन ले कर आईं तो गोरखनाथ ने सोचा ''ऐसी सुन्दर मनमोहक माँ की गोद में निरन्तर खेलता तो कैसा आनन्द होता।'' माँ प्रसन्न हुईं। परीक्षा हो गई। नारी के प्रति मातृ–भाव यही योगी का लक्षण है। उन्होंने शिवजी से कहा

'महाराज, केवल एक ही योगी गोरखनाथ आपको पाने योग्य है।' नारी में मातृ–भावना की कलयुग में एक ही मिसाल है और वह हैं परमहंस रामकृष्ण देव। उनके जीवन से शिक्षा लेनी चाहिए।

तुम्हारे घर में आग लगी हो, चारों तरफ धुँआ–धाड़ मचा हो और तुम उसमें फंसे हो। क्या तुम्हें उस समय सूझेगा कि आग कैसे लगी, किसने लगाई? उस समय तो तुम पहले बच निकले की सोचोगे और फिर कोई दूसरी बात तुम्हारे दिमाग में आयेगी। जब बच कर बाहर निकल आओगे तो खुद ही सब बातें मालूम हो जायेंगी। इसी तरह हे प्रेमियों, तुम संसार रूपी मायाजाल में घिरे हुये हो, चारों तरफ आग लगी है, पहले गुरु का सहारा ले कर उससे अपना निवारण करो। तुम्हारी आत्मा निखर आयेगी, तब ऐसे सवालों का जवाब खुद ही मिल जायेगा।

ईश्वर सबका कल्याण करें।

सत्संग एवं भण्डारों की सूचना

सहर्ष सूचना दी जाती है कि आगामी तीन महीनों में जो आयोजन तय किये गये हैं वे इस प्रकार हैंः

1. दादा गुरुदेव की पुण्य तिथि पर 17–18 मई को बरगनियां में

सत्संग स्थल :– ....

यह स्थान रेलवे स्टेशन से .... किलोमीटर की दूरी पर है

अपने आने की सूचना निम्न व्यक्तियों में से किसी को भी अवश्य दें

1. श्री .... फोन– ....
2. श्री .... फोन– ....
3. श्री .... फोन– ....

2. परम पूज्य डॉ. करतार सिंह जी की जन्म जयंती और पुण्य तिथि पर 12, 13, और 14 जून को झुंझुंनू में।

सत्संग स्थल :– ....

यह स्थान रेलवे स्टेशन से .... किलोमीटर की दूरी पर है।

अपने आने की सूचना निम्न व्यक्तियों में से किसी को भी अवश्य दें

1. श्री .... फोन– ....
2. श्री .... फोन– ....
3. श्री .... फोन– ....

3. गुरुपूर्णिमा के अवसर पर ....को हाजीपुर, बिहार में।

यह स्थान रेलवे स्टेशन से .... किलोमीटर की दूरी पर है अपने आने की सूचना निम्न व्यक्तियों में से किसी को भी अवश्य दें

1. श्री .... फोन– ....
2. श्री .... फोन– ....
3. श्री .... फोन– ....

–मंत्री

रामाश्रम सत्संग, गाज़ियाबाद

बधाई-सन्देश

आप सभी भाई–बहनों को नववर्ष 2016 की बहुत–बहुत बधाई। ईश्वर से प्रार्थना है कि आप सपरिवार सुखी, स्वस्थ और संतुष्ट रहें और ईश्वर प्रेम में बढ़ते उत- साह और आनन्द से दिनोंदिन प्रगति करते रहें।

आपने जो इस अवसर पर मेरे और मेरे परिवार के प्रति शुभकामनायें व्यक्त की हैं, उनके प्रति हम अति आभारी हैं तथा सभी को सप्रेम धन्यवाद देते हैं।

– शक्ति कुमार सक्सेना

राम संदेश के नियम

1. आध्यात्मिक विद्या के गुप्त और अनुभवी रहस्यों तथा सदाचार-शिक्षा को सरल भाषा में जनता तक पहुँचाना हमारी राम सन्देश पत्रिका का मुख्य उद्देश्य है।
2. राम-सन्देश में आत्मिक, नैतिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक उन्नति के लेख ही छपते हैं, राजनैतिक या रोमांचक लेख नहीं। रचनाओं में काट-छाँट करने अथवा छापने या न छापने की स्वतंत्रता सम्पादक को है।
3. राम सन्देश का वर्ष जनवरी में आरम्भ होता है। वार्षिक चन्दा 20 (बीस) रुपये है। एक वर्ष से कम तथा आजीवन ग्राहक नहीं बनाये जाते। चन्दा दशहरा भंडारों में या मैनेजर, राम संदेश को, 9-रामाकृष्णा कॉलोनी, जी. टी. रोड, गाजियाबाद (उ.प्र.) 201009 के पते पर दिसम्बर के अंत तक अवश्य भिजवा दें।
4. राम सन्देश डाक द्वारा नहीं भेजा जाता है। इसका वितरण भंडारों पर ही किया जाता है। कृपया अपनी प्रति लेना न भूलें।

राम संदेश

रजि. ऑफिस

9-रामाकृष्णा कॉलोनी, जी.टी. रोड,

गाज़ियाबाद-201009

मुद्रक, प्रकाशक व संपादक : डॉ. रचित कुमार सक्सेना

मुद्रण : अंकोर पब्लिशर्स (प्रा.) लिमिटेड, बी-45, सेक्टर-6, नोएडा-201301